शिक्षा में स्नातक (बी० एड०)
Bachelor of Education (B.Ed)

भाग – 2

Part - II

पत्र – चौदहवाँ

Paper - XIV

शांति एवं मूल्य शिक्षा
(Peace and Value Education)

Nalanda Open University

(A State Open University)

Course Design and Preparation Team

Original Text Written by :

1. **Prof. (Dr.) Preeti Sinha**
   Coordinator, NOU
   School of Teacher Education
   Unit – 7

2. **Dr. Pallavi**
   Assistant Professor
   NOU, Patna
   Unit – 2, 8

3. **Dr. Manjula**
   Assistant Professor
   Islamia Teachers Training
   College, Patna.
   Unit– 1.

4. **Abhay Kumar**
   Assistant Professor
   Vasundhara Teachers,
   Training College, Silout,
   Muzaffarpur
   Unit – 3, 4.

5. **Dr. Vibesh Kumar Choubey**
   Assistant Professor
   Magadh University
   Unit – 5, 6.

Co-ordinator

Prof. (Dr.) Preeti Sinha

School of Teacher Education

Nalanda Open University, Patna

Published in November, 2017

© Nalanda Open University (Estd. 1987)

All rights reserved. No part of this book may be reproduced in any form by mimeography or any other means without permission in writing from the Nalanda Open University.

Further information regarding other courses of the Nalanda Open University may be obtained from the University Office at 3rd Floor, Biscomaun Bhawan, West Gandhi Maidan, Patna - 800 001.

Printed and Published on behalf of Nalanda Open University, Patna by the Registrar (E), N.O.U.

Printed at : **INDIAN ARTS OFFSET,** Basement of S.B.I, Mahendru , Ashok Rajpath, Patna– 6.

शिक्षा में स्नातक (बी0एड0)
Bachelor of Education (B.Ed)

Part - II, Paper - XIV

CONTENTS

इकाई 1.	मूल्य की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Value)	....	4 - 9
इकाई 2.	मूल्य–प्रणाली में संस्कृति एवं सभ्यता की भूमिका (Role of Culture and Civilization in Value System)	....	10 - 15
इकाई 3.	व्यवहार विज्ञान में मूल्यों की अवधारणा (Concept of Values in Behavioural Science)	....	16 - 31
इकाई 4.	पारिवारिक मान्यताएँ (Family Values)	....	32 - 59
इकाई 5.	मूल्य अवबोध (Values Realization)	....	60 - 66
इकाई 6.	सामाजिक एवं उपभोक्ता जागरूकता (Social and Consumer Awareness)	....	67 - 72
इकाई 7.	वैश्विक विश्व में विश्व शांति की प्रासंगिकता (Relevance of World Peace in Global World)	....	73 - 81
इकाई 8.	विश्व–शांति हेतु प्रमुख संस्थाएँ (Important Organization for World Peace)	....	82- 87

इकाई:1

मूल्य की आवश्यकता एवं महत्त्व

(Need and Importance of Value)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

1.0 उद्देश्य (Objective)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.2 मूल्य की अवधारणा (Concept of Value)

1.3 मूल्य का अर्थ (Meaning of Value)

1.4 वर्त्तमान भारतीय समाज के मूल्य एवं आकांक्षाएँ (Value and aspiration of present day Indian Society)

1.5 मूल्यों के स्त्रोत के रुप में संविधान (Constitution as a source of value)

1.6 मूल्यों के प्रति निष्ठा स्थापित करने के लिए विद्यालय के क्रियाकलाप (Activities of School to Establish Loyalty towards Value)

1.7 सारांश (Summary)

1.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण:

- विद्यालय की पाठ्यचर्या में मूल्य शिक्षा के उद्देश्य जिस प्रकार समाहित किये गये हैं, उन्हें समझ सकेंगे।
- जीव की वर्त्तमान स्थिति में मूल्यों के आयामों के प्रति लगाव अनुभव करेंगे और अधिक सजग हो सकेंगे।
- हमारे संविधान में उल्लेखित मूल्यों को पहचान सकेंगे।
- छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान कर सकेंगे कि वे इन मूल्यों को जीवन में उतार सकेंगे।
- छात्रों में मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए अध्यापक के रूप में अपनी भूमिका को समझ सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

'मूल्य की आवश्यकता एवं महत्त्व' नामक इस इकाई को पढ़कर आप मूल्य के स्वरुप, अर्थ, आवश्यकता एवं अनिवार्यता के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। जैसा कि हम सभी यह जानते हैं कि विद्यालयी शिक्षा का उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास करना है। इस व्यापक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यालयी जीवन में शिक्षक उन्हें सूचनात्मक ज्ञान का ज्ञाता बनाने के साथ–साथ उन्हें स्वस्थ दृष्टिकोण, आदतों, कुशलताओं एवं मूल्यों के प्रति सजग–संवेदनशील व्यक्तित्त्व भी बनायें। इस "समग्र–विकास" की प्राप्ति

के लिए मूल्य–शिक्षा के सम्प्रत्यय एवं प्रयोग को समझाना होगा। प्रस्तुत इकाई मूल्य के अवधारणा की समझ, मूल्य–शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व का अनुप्रयोग करने में आपकी मदद करेगा।

1.2 मूल्य की अवधारणा (Concept of Value)

मूल्य शिक्षा किसी विषय–विशेष से संबंधित न होकर विद्यालय की समस्त पाठ्यचर्या और क्रियाकलापों का अभिन्न अंग है। मूल्य शिक्षा का अभिप्राय सुसंगठित सभ्य समाज के उद्देश्यों को वास्तविकता के धरातल पर लाना है। इसके लिए भारत के संविधान ने हमें दिशा बोध दिया है। एन.सी.ई.टी. द्वारा 1988 में बनाये गये प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा में मूल्य शिक्षा को विद्यालयों पाठ्यक्रम का मूख्य अंग माना गया है।

विद्यालय स्तर पर शिक्षा का सामान्य उद्देश्य समानता के विकास पर बल देना है। ये समानताएं मनुष्य को समाज में प्रभावशाली बनाये रखती है। प्रभावशाली व्यक्तित्त्व परस्परता एवं सामंजस्य जैसी उच्च क्षमताओं का धनी होता है। अतः आवश्यक है कि विद्यालयी जीवन में बालक के चरित्र एवं व्यवहार में समानता के प्रति आकर्षण पैदा हो। मित्रता, सहयोग, करुणा, आत्मानुशासन, आत्म–संयम, आत्म–विवेचन, विनोदशीलता, प्रेम, साहस, सामाजिक न्याय के प्रति जागरुकता आदि गुणों को प्रकाश में लाकर बालकों में समानता के प्रति चेतना (consciousness for equality) एवं समता के प्रति प्रेरणा (Motivation for equality) जगायी जा सकती है। अध्यापक को चाहिए कि वह बच्चों में ईमानदारी, सत्यता, निर्भरता, सृजनता, निर्भीकता और करूणा जैसी नैतिक और चारित्रिक मूल्यों का विकास करे। यहां प्रासंगिक होगा कि हम संक्षिप्त शब्दों में नैतिक और चारित्रिक मूल्यों का अर्थ समझ लें। धार्मिक और नैतिक शिक्षा समिति (1959) के द्वारा नैतिक मूल्यों की जो परिभाषा दी गई है, उसके अनुसार, "जो भी शिक्षा हमें दूसरे के प्रति सही आचरण करने में सहायक हो, वही नैतिक शिक्षा है।" समिति द्वारा आध्यात्मिक मूल्यों की विवेचना इस प्रकार की गयी है– "जो मूल्य हमें स्वार्थ से उठकर परमार्थ के लिए या दूसरे महान् कार्यों के प्रति समर्पित होने के लिए प्रेरित करें, वही आध्यात्मिक मूल्य हैं।"

सच तो यह है कि विद्यालय एक ऐसा स्थान है, जहाँ हमें शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहिए। इस खण्ड के सूचनाओं एवं संकल्पनाओं द्वारा यह प्रयत्न किया गया है कि आपको मूल्य शिक्षा, जो सम्पूर्ण पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग है, उद्देश्यों, विषयवस्तु, कार्यप्रणाली एवं आवश्यकताओं से अवगत कराया जाये।

1.3 मूल्य का अर्थ (Meaning of Value)

जीवन और संसार को हम जिस अर्थ के संदर्भ में समझने की चेष्टा करते हैं, उस अर्थ को सामान्य रूप से 'मूल्य' कहा जाता है। कुछ दार्शनिक मूल्य को वस्तुनिष्ठ अर्थात् पदार्थ पर आधारित मानते हैं, तो कुछ अन्य विचारक इन्हें व्यक्तिनिष्ठ अर्थात् व्यक्ति के अनुभव पर आधारित मानते हैं। मूल्यों की व्यक्तिनिष्ठ विचारधारायें पदार्थो का मूल्यांकन मनुष्यों की व्यक्तिगत संतुष्टि के संदर्भ में करती है, जबकि वस्तुनिष्ठ विचारधाराएं मानवीय संतुष्टि का ध्यान रखते हुए भी कुछ वस्तुनिष्ठ सिद्धांतों पर विश्वास रखती है और उन सिद्धांतों के अनुसार ही मूल्य सिद्धांतों को स्थिर करती है। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि मूल्यों को व्यक्तिगत संतुष्टि पर आधारित कर देना, मूल्यों के मूल्य को ही समाप्त कर देना है। इसलिए शिक्षा की दृष्टि से इन व्यक्तिनिष्ठ विचार–धाराओं का अधिक महत्त्व नहीं है। मूल्य एक न होकर अनेक होते हैं। भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के रूप में भी उनका वर्गीकरण किया जाता है। नैतिक, आर्थिक आदि दृष्टियों से भी मूल्यों की श्रेणियाँ बनायी जाती हैं, किन्तु ये वर्गीकरण सुविधा की दृष्टि से ही हैं।

मूल्य एक अमूर्त सम्प्रत्यय है। इसका संबंध मनुष्य के भावात्मक पक्ष से होता है, जो कि उसके व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करता है। दर्शन शास्त्र में मनुष्य के 'जीवन के प्रति दृष्टिकोण' को 'मूल्य' की संज्ञा दी जाती है।

मूल्य की परिभाषाएं (Definition of Value):

राधाकमल मुखर्जी के मतानुसार,

> "सामाजिक मूल्य वे सामाजिक मान–लक्ष्य या आदर्श है। जिनके आधार पर विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है।"

फिचर के मत में,

"सामाजिक दृष्टि से मूल्यों को उन कसौटियों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनके द्वारा समूह या समाज व्यक्तियों, प्रतिमानों, उद्देश्यों और अन्य सामाजिक–सांस्कृतिक वस्तुओं के महत्त्व का निर्णय करते हैं।"

संक्षेप में, मूल्य वे सामान्य सिद्धांत हैं जो प्रतिदिन के जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। ये समाज द्वारा मान्यता प्राप्त लक्ष्य हैं, जो समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से आन्तरीकृत किए जाते हैं। मूल्य अभिवृत्तियाँ तथा आदर्श हमारे व्यवहार को निर्देशित तथा नियंत्रित करते हैं। मूल्य अभिप्रेरणा को दिखा देते हैं, आवश्यकताओं की सम्पुष्टि के स्वरुप को निर्धारित करते हैं एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों के चयन में निर्णय लेने में निर्णायक का कार्य करते हैं। हम सहयोग करेंगे अथवा असहयोग सहनशील होंगे अथवा असहनशील, उदार–हृदय होंगे अथवा संकीर्ण कठोर हृदय, आत्मविश्वासी होंगे अथवा भयभीत,– ये हमारे विचारों पर हीं निर्भर नहीं करता। यह हमारे मूल्यों द्वारा, हमारे स्थायी भावों तथा अर्जित–परिमार्जित मूलप्रवृत्तियों के द्वारा निश्चित होता है।

1.4 वर्त्तमान भारतीय समाज के मूल्य एवं आकांक्षाएँ (Values and Aspirations of Present Day Indian Society)

प्रत्येक समाज के कुछ नियम, उपनियम, होते हैं, जो उसकी आधारशिला होते हैं और जिसका पालन करने पर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बनता है। यहीं नियम और आदर्श मूल्य कहलाते हैं, जो बताते हैं कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है? सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रुप से चलाने के लिए उच्चस्तरीय मानदण्डों का निर्धारण करना पड़ता है– मूल्य ही वे मानदण्ड हैं, जो सामाजिक व्यवस्था को सुचारूपेण चलाने में सहायक होते हैं। प्रत्येक समाज के मूल्यों में भेद होना, इसी सच का उदाहरण है।

- **प्राचीन भारतीय समाज के मूल्य (Value of Ancient Indian Society)**

प्राचीन भारत में चार मूल्य बताये गए हैं:– अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। इनमें 'अर्थ' और 'काम' को जैविक आवश्यकताओं के पूरक के रूप में स्वीकार किया गया है और धर्म और मोक्ष को आध्यात्मिक मूल्यों की श्रेणी में रखा गया है।

प्राचीन भारतीय संस्कृत में मोक्ष को परम मूल्य माना गया है, क्योंकि यह व्यक्ति को निराशा और सांसारिक दुःखों से बचाती है। यह सांसारिक और पारलौकिक जीवन का समन्वय है। पुरूषार्थ चतुष्टथ की इस अवधारणा को मानवीय सामाजिक जीवन का एक मनोवैज्ञानिक और नैतिक आधार माना जा सकता है।

- **वर्त्तमान भारतीय समाज के मूल्य (Value of present day Indian Society)**

सन् 1947 में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई और सन् 1950 में स्वतंत्र भारत का नवीन संविधान रचित हुआ, जिसकी प्रस्तावना में ही लिखा है, "हम भारत के लोग भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए उन सब में व्यक्ति गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करानेवाली बंधुता बढ़ाने के लिए . . . इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्जित करते हैं।"

उपरोक्त प्रसंग में न्याय, (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक) स्वतंत्रता, समता और भ्रातृत्त्व को लोकतांत्रिक धर्म निरपेक्ष समाजवादी गणराज्य व्यवस्था के आधार पर मूल्यों की श्रेणी में मानया गया है, जिनकी विवेचना निम्न प्रकार से की जाती है:

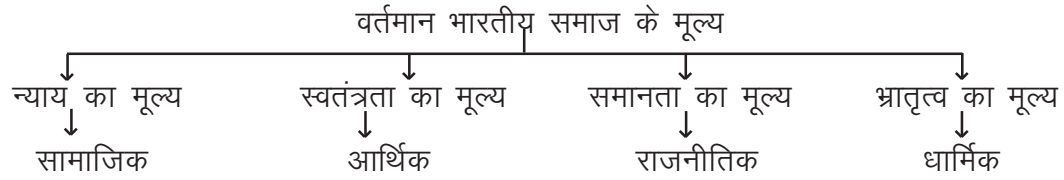

1.5 मूल्यों के स्त्रोत के रुप में संविधान (Constitution as a Source of Value)

आप प्रस्तावना में लिखे मूल्यों के क्रम पर विचार कीजिए। प्रथम स्थान पर न्याय, इसके बाद स्वतंत्रता, समता, बंधुता और राष्ट्र की एकता और अखंडता का स्थान है। पूरे संविधान में प्रस्तावना के निहितार्थ ही व्यवस्थाएं बनायी गयी है। इनमें से भाग 3–मूल्य अधिकारों/भाग4 – राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों और भाग 4 (क) मूलभूत कर्त्तव्यों के कुछ अनुच्छेद यहाँ परिचर्चा हेतु प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

- **भाग 3:** मूल अधिकारों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

– समता का अधिकार
– स्वतंत्रता का अधिकार
– शोषण के विरूद्ध अधिकार
– धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
– सांस्कृतिक और शिक्षा का अधिकार
– संवैधानिक उपचारों का अधिकार

इन अधिकारों को कानून द्वारा लागू किया जा सकता है। संविधान प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार देता है कि यह उच्चतम न्यायालय में इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए जा सकता है।

- **समता का अधिकार:**

i. **विधि के समक्ष समता:** भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

ii. धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिबंधः–

(क) **राज्य,** किसी नागरिक के विरूद्ध केवल मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

(ख) **कोई नागरिक,** केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी आधार पर
– दुकानों, भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान पर प्रवेश या
– पूर्णतः या अंशतः राज्य–निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के संबंध में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बधन या शर्त के अधीन नहीं होगा।

उपर्युक्त दो अनुच्छेद (14 और 15) के अंश यह स्पष्ट करते हैं कि हमें अपने व्यवहार में समता के नाते विद्यालय और समाज में बालक और बालिकाओं के प्रति समता का व्यवहार करना चाहिए। बालिकाओं को समर्थ बनाने के लिए शिक्षा एक प्रभावी साधन होना चाहिए। इस प्रकार स्वयं में एक सामाजिक मूल्य है।

- **स्वतंत्रता का अधिकार:**

अनुच्छेद 19: वाक्–स्वातंत्रय आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण–सभी नागरिकों को

कः वाक्–स्वातंत्रय और अभिव्यक्ति–स्वातंत्रय का,
खः शांतिपूर्वक और निरायुद्ध सम्मेलन का,
गः संगम या संघ बनाने का
घः भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का
ङः भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का और
चः कोति वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार होगा।

उपरोक्त संदर्भ में यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि उक्त उपखंड द्वारा दिए गये अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखण्डता पर यदि कोई संकट आता है, तो राज्य को प्रतिबंध लगाने का अधिकार होगा। इस व्यवस्था में भी सभी नागरिकों को राज्य की सुरक्षा, पड़ोसी राज्यों एवं व्यक्ति से मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय अवमानना से विलग कार्यशैली अपनाना लोकतांत्रिक मूल्य कहा जाएगा।

यद्यपि संविधान में बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है, परन्तु इस पर कुछ तर्कसंगत प्रतिबंध भी लगाये गये हैं। इस प्रतिबंध ने स्वतंत्रता के अधिकार को भी एक 'मूल्य' का रूप दे दिया है। हम "सत्यं वदम्" और "त्रियं वदम्" से परिचित हैं। अतः अब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता और नैतिकता की स्थापना करने एवं उसे बढ़ावा देने के लिए 'मूल्य' के रुप में काम करना होगा।

- **भाग–4: राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व**

  अनुच्छेद 38: राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा।

  अनुच्छेद 39 क: राज्य समान अवसर के आधार न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए; इसकी व्यवस्था करेगा।

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में न्याय भी 'मूल्य' है। एक अध्यापक के नाते विद्यालय में न्याय के मूल्य को व्यवहार में लाने का हमारा उत्तरादायित्व है। अतः, आप को विद्यालय के दैनिक कार्य में व्यवहारिक रूप से न्याय को बढ़ावा देना चाहिए; असमानता के खाई को दूर करना चाहिए।

- **भाग–4 'क': मूल कर्त्तव्य**

  अनुच्छेद 51 'क' मूल कर्त्तव्य: भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वहः

i. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्र–गान का आदर करें।
ii. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।
iii. भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।
iv. देश की रक्षा करे और आह्मन किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
v. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व का भावना की निर्माण करे, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो।
vi. हमारी संस्कृति की समरस गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिक्षण करें।
vii. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत् वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें।
viii. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
ix. सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा करें।
x. हिंसा से दूर रहे। मन की शांति तथा विश्वशांति की स्थापना का प्रयास करें।
xi. व्यक्तिगत तथा सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करें।

उपरोक्त विवेचन में निहित भाव मनुष्य को हिंसामुक्त समाज बनाने का मूल्य बताता है। यहां मनुष्य के लिए 'मन की शांति' और 'विश्व शांति' को मानक मूल्य दर्शाया गया है। हमारे अध्यापन की प्रक्रिया में हमें इन कर्त्तव्यों से विद्यार्थियों को अवगत कराना चाहिए।

1.6 मूल्यों के प्रति निष्ठा स्थापित करने के लिए विद्यालय के क्रियाकलाप (Activities of School to Establish Loyalty towards Value)

सह–पाठचर्या क्रियाकलाप बच्चों में मूल्यों का विकास करते हैं। इन क्रियाकलापों में भाग लेने से मूल्यों को व्यवहार में लाने के लिए अवसर और परिस्थितियां मिलती हैं। विद्यार्थियों में मूल्यों के प्रति निष्ठा स्वतः और प्रभावी तौर पर विकसित होती है। स्व–शासन, प्रातःकालीन सभा, वाद–विवाद, खेल–कूद दिवस आदि परस्पर सहयोग और उत्तरदायित्त्व की भावना का विकास करते हैं। गांधी जयंती जैसे महान विभूतियों के जन्मदिन मनाने से अनेक आदर्शों के पालन करने की प्रेरणा मिलती है। वन–महोत्सव मनाने से वृक्षों के प्रति हमारा प्रेम और पर्यावरण से लगाव होता है। दैनिक प्रातःकालीन सभा में प्रार्थना, दिन का विचार, समाचार, घोषणाएँ, बालकों की उपलब्धियों और जन्मदिन की शुभकामनाएं और राष्ट्रीय गान शामिल है। साथ ही कलाकृतियों, नाटक और चित्रकला से विभिन्न अवसरों पर सजावट करने से भी मूल्य–संबंधी प्रेरणा जगायी जा सकती है।

मूल्यों के विकास के उद्देश्यों की प्राप्ति सह–पाठ्यचर्या क्रियाकलापों पर निर्भर करती है। क्रियाकलापों की

अवधि, छात्रों की प्रतिभागिता, अभिप्रेरणा की तकनीक, और सुविधाओं पर विद्यार्थियों का उत्साह निर्भर है। इन क्रियाकलापों को लोकतांत्रिक रूप से आयोजित किया जाना चाहिए। इनमें अधिक से अधिक संख्या में विद्यार्थियों को शामिल करना चाहिए। विद्यार्थियों को उत्तरदायित्त्व सौंपना चाहिए, जिससे कि आपके मार्गदर्शन में उनकी क्षमता का विकास हो सके।

1.7 सारांश (Summary)

मूल्य–मीमांसा से तात्पर्य किसी वस्तु में निहित गुणों की मीमांसा है जो कि उसको किसी अन्य वस्तु से भिन्न बनाती है। 'मूल्य' वह गुण–समुच्चय है; जो कि वस्तु या व्यक्ति विशेष में निहित होंगे तथा वस्तु या व्यक्ति उस विशिष्ट गुण से परिभाषित की जाएगी। यथा अग्नि का मूल्य है उष्णता। जल का गुण धर्म है शीतलता। अग्नि और जल की प्रकृति का संज्ञान इनके संबंधित गुणधर्मों या मूल्यों से भिन्न किसी अन्य आधार पर कराया जा सकता है?

पश्चिमी दर्शन के परिवार में मूल्यमीमांसा अन्य शाखओं की अपेक्षा एक शिशु है। यद्यपि इसकी जड़े प्लेटो, अरस्तु, सेंट टामस, एक्विस और स्पिनोजा में विद्यमान हैं। नीतिशास्त्र या नैतिक शुभ का सिद्धांत दर्शन के अत्यधिक प्राचीन क्षेत्रों में से एक है और सौंदर्यशास्त्र ने दार्शनिकों का बहुत समय से ध्यान आकृष्ट किया है। लेकिन आधुनिक समय में अनेक व्यक्तियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन क्षेत्रों तथा हमारे जीवन के अन्य मूल्य संबंधी क्षेत्रों में व्याप्त एक सामान्य क्षेत्र है। यह माना जाता है कि इन विभिन्न मूल्य संबंधी क्षेत्रों को समझने में यह सामान्य क्षेत्र चाबी का काम करेगी। इसे मूल्य मीमांसा या एक्सियॉलॉजी का नाम दिया गया। एक्सियॉ का अर्थ है –'समान मूल्य का'। मूल्य के अनेक सिद्धांत हैं और मूल्य के अनेक प्रकार भी है। दार्शनिकों ने अब तक जिन मूल्यों की ओर प्रत्यक्षतः अधिक ध्यान दिया है, वे हैं– नैतिक, सौंदर्यपरक, धार्मिक और सामाजिक मूल्य। कुछ अन्य मूल्य हैं– आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, उपयोगिता संबंधी, मनोरंजनात्मक और स्वास्थ्य संबंधी मूल्य। वर्त्तमान भारतीय समाज, या यूँ कहें कि विश्व–समाज की इच्छा और अपेक्षा मनुष्य की रचनात्मक अभिवृत्ति एवं शांत–सहयोगात्मक प्रवृत्ति एवं दृष्टिकोण का विकास करना है। 'मूल्य' की संकल्पना समाज एवं मनुष्य के बीच सामंजस्य एवं समरसता की भावना का विकास करती है। अतः, इसकी अनिवार्यता एवं महत्ता व्यापक है।

1.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. विद्यालयी शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
   Throw light on the main aims of school education.
2. मूल्य की अवधारणा से आप क्या समझते हैं? परिभाषा के साथ वर्णन कीजिए।
   What do you understand by the concept of value? Describe with definitions.
3. मूल्यों के प्रमुख स्त्रोत क्या हैं? भारतीय संविधान में वर्णित प्रमुख मूल्यों पर प्रकाश डालिए।
   What are the main source of value? Throw light on the main values described in the constitution.
4. वर्त्तमान भारतीय समाज में मूल्यों की आवश्यकता पर विवेचना कीजिए।
   Discuss the need of valus in the present Indian Society.
5. छात्रों में मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए अध्यापकों की भूमिका क्या–क्या हैं?
   What is the role of a teacher to develop loyalty towards value?

1.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. माण्डेय एवं मित्र, 1989, मूल्य शिक्षण, विनोद पब्लिकेशन, आगरा।
2. प्रशिक्षण सामग्री, विशेष शिक्षक–उन्मुखीकरण कार्यक्रम, 1994, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद, बिहार।
3. डागर, बी. एस, 1992, हरियाणा, साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़।
4. मंगल, एम. के./चतुर्वेदी शुत्रा, 2013 अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

इकाई:2 मूल्य–प्रणाली में संस्कृति एवं सभ्यता की भूमिका
(Role of Culture and Civilization in Value System)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

2.0 उद्देश्य (Objective)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.2 मूल्य की अवधारणा एवं प्रकृति (Concept and Nature of Value)

2.3 मूल्य–निर्धारण की प्रक्रिया (Process of Determinig Value)

2.4 मूल्य–प्रणाली के रुप में संस्कृति एवं सभ्यता (Culture and Civilization in form of Value System)

2.5 सारांश (Summary)

2.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

2.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

2.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् छात्रगण मूल्य की अवधारणा, अर्थ एवं महत्त्व को जान सकेंगे। वे इसकी प्रकृति से भी परिचित हो सकेगे और मूल्यों के स्त्रोत की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। मूल्य–तंत्र के रुप में संस्कृति एवं सभ्यता की जानकारी दी जा सकेगी।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

मूल्य मनुष्य के प्रत्येक क्षेत्र में यथा चुनाव, निश्चय, निर्णय तथा कार्य में निर्णायक की भूमिका निभाता है। यहाँ तक की दो वस्तुओं के बीच ज्यादातर चुनाव अपने–अपने मूल्यों के आधार पर किया जात है। इन मूल्यों का निर्धारण हम सब अपने–अपने सभ्यता तथा संस्कृति के अनुसार करते हैं। यही हमारी मूल्य–तंत्र (Value System) की आधारशीला होती है। अतः, इस पाठ के माध्यम से हम मूल्य–तंत्र को जाने एवं समझेंगे। इसे जानने के लिए मूल्य की अवधारणा, इसके अर्थ एवं प्रकृति को भी जानना आवश्यक है। अतः, इन सभी बातों की कुछ जानकारी इस पाठ में भी दी जाएगी।

2.2 मूल्य की अवधारणा एवं प्रकृति (Concept of and Nature of Value)

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में हर पल, हर दिन कार्यों के कार्यांवयन हेतु कुछ निर्णय करना होता है। यह निर्णय उसे करीब–करीब हर दिन, हर समय करना पड़ता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मनुष्य के मन में प्रायः ऐसे प्रश्न उठते हैं कि क्या अच्छा है, किसे कार्य को करना उचित होगा? जीवन जीने का सही, उचित एवं अच्छा तरीका क्या होगा? मूल्य शास्त्र के अंतर्गत इन्हीं विषयों पर विचार किया जाता है– जो हमें हर कदम पर अच्छे–बुरे, शुभ–अशुभ, सही–गलत के बीच अंतर करना सीखाता है। मूल्य व्यक्ति के हर कार्यों, व्यवहारों, विचारों को मापदण्ड प्रदान करता है। यह मानव–अस्तित्व के लिए अति महत्वपूर्ण है। वास्तव में मूल्य शास्त्र, दर्शनशास्त्र का अंग है। दर्शन के इस क्षेत्र में, मानव जाति अपनी व्यावहारिक उपादेयता की जानकारी प्राप्त करती है और यही मूल्य–शास्त्र का विषय–क्षेत्र है।

2.2.1 मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Value)

मूल्य मानव अस्तित्व में किसी महत्वपूर्ण चीज का प्रतिनिधित्व करता है। यदि एक व्यक्ति स्वयं से यह सवाल करता है कि वह जीवित क्यों है तथा उसके जीवन का लक्ष्य क्या है? तो उत्तर में हम अपने जीवन के कुछ लक्ष्य या उद्देश्य बताएँगे, जो हमें जीने के लिए प्रेरित करता है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति समाज में सुधार लाना चाहता है, तो कोई कला की साधना करना चाहता है, कोई समाज में उच्च स्थान प्राप्त करना चाहता है, तो कोई सत्य के मार्ग पर चल कर ईश्वर की अराधना करना चाहता है, कोई योग का मार्ग अपनाकर मोक्ष प्राप्त करना चाहता है। इस तरह, व्यक्ति ऐसे मूल्यों की अवधारणा तक पहुँच जाता है जिनको अपने–आप में मूल्य मानना चाहिए, वे परम मूल्य हैं। दर्शन में इन्हीं स्वतः मूल्यों (Intrinsic Value) को मौलिक माना जाता है, क्योंकि ये मनुष्य के उद्देश्य है जिसे परतः मूल्य (Instrumental Values) के द्वारा प्राप्त करते हैं। परतः मूल्य (Instrumental Values) को आदर्शों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। अतः, कह सकते हैं कि "मूल्य किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण है, जो समालोचना या वरीयता को प्रकट करता है। यह एक आदर्श या इच्छा है, जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीता है तथा आजीवन प्रयास करता रहता है।"

"मूल्य" शब्द अंग्रेजी वैल्यू (Value) का समानार्थी है, जो लैटिन भाषा के वैलियर (Valere) से बना है, जिसका अर्थ है 'योग्यता' या महत्व। मूल्य के लिए संस्कृत में 'इष्ट' शब्द है, जिसका अर्थ है– वह जो इच्छित है अर्थात् वह जो इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की संतुष्टि करें, वही मूल्य है। यानि मूल्य इच्छा की संतुष्टि करते हैं। **पार्क** के अनुसार, "वे वस्तुएँ मूल्यवान हैं जो इच्छित हैं"। (According to Park, "Thinks are valuable because, they are desired". **स्टेनली के अनुसार,** "मूल्यों का निर्माण मनुष्य की रुचि द्वारा होता है, अतः मूल्यों के अंतर्गत मनुष्य द्वारा इच्छित वस्तु की परख अथवा मूल्यांकन भी आता है।"

2.2.2: मूल्य का महत्व (Importance of Value)

भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के लिए अलग–अलग मूल्य होते हैं, अतः मूल्यों के महत्व में अंतर किसी के लिए स्वयं के निर्धारित मूल्य के अनुसार होते हैं। किसी के लिए, एक मूल्य महत्वपूर्ण होता है तो दूसरे के लिए अन्य मूल्य महत्वपूर्ण होता है। कुछ लोग निरपेक्ष एवं शाश्वत मूल्य (Absolute and Eternal Value) को महत्व देते हैं, तो कुछ लोग सापेक्ष महत्व (Relative Importance) पर जोर देते हैं। जो लोग निरपेक्ष एवं शाश्वत मूल्य में विश्वास रखते हैं, उनके अनुसार कुछ कार्य स्वभावतया बुरे होते हैं, जबकि कुद कार्य परिस्थितिवश अच्छे अथवा बुरे हो सकते हैं। जैसे जरुरतमंदों की मदद करना सार्वभौमिक रुप से अच्छा कार्य है, जबकि हत्या या अनाचार सर्वथा निन्दनीय कार्य है। जबकि सापेक्षवादियों के मतानुसार, मूल्य स्थितियों में सापेक्षता में विश्वास करते हैं। इसको मानने वाले कुछ मूल्यों को अन्य मूल्यों की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं। संकट अथवा असमंजस की स्थिति में मूल्यों की प्राथमिकता के आधार पर समाधान की चेष्ट करते हैं।

2.2.3: मूल्य की प्रकृति (Nature of Value)

इन बातों से हमें मूल्य की प्रकृति का भान होता है। इसकी प्रकृति मुख्यतः तीन मत हैं:– (1) आत्मनिष्ठ मत (Subjective View), (2) वस्तुनिष्ठ मत (Objective View), (3) आपेक्षकीय मत (Relativistic View) । मूल्य की इन्हीं प्रकृतियों के मध्य हम अपने मूल्यों का चुनाव करते हैं।

1. **आत्मनिष्ठ मत (Subjective View):** मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन संतोष, पसंद वगैरह के आधार पर मूल्य निर्भर करते हैं। ये सभी व्यक्ति के अनुभवों से संबंधित होते हैं, जिनसे मूल्यों का विकास होता है।
2. **वस्तुनिष्ठ मत (Objective View):** मूल्य व्यक्ति से स्वतंत्र होते हैं अर्थात् वे व्यक्ति के भीतर नहीं होते हैं, ऐसे मूल्यों में वस्तुनिष्ठता होती है।
3. **आपेक्षकीय मत (Relativistic View):** नियामक तथा संरचनात्मक नियम के मिलन स्थल का मिलन बिन्दु है मूल्य। मनुष्य की किसी विशेष सभ्यता अथवा संस्कृति का प्रतिभागी होता है। उसका असर उसका मूल्य निर्धारण करता है जिसे अपेक्षकीय मत (Relativstic View) कहते हैं।

अब हम यह जानेगें कि मूल्य निर्धारण किन प्रक्रियाओं के तहत किया जात है।

2.3 मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया (Process of Determining Values)

मूल्य–निर्धारण की प्रक्रिया में **रथ, हर्मिन तथा साइमन (1966)** ने अपने विचार प्रस्तुत किए। इसके लिए उन लोगों ने सात मानदण्डों को निर्धारित किया। ये सात मानदण्ड हैं:

1. **स्वतंत्र चयन (Choosing Freely):** व्यक्ति जब स्वयं मूल्यों का चुनाव करता है, तब उसपर खरा उतरने के लिए अधिक जागरूक रहता है, तथा लोगों की उपस्थिति अनुपस्थिति से उनके आचरण पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है। अत:, व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने वाले मूल्य व्यक्ति के स्वतंत्र चयन के परिणामस्वरुप स्थापित होना चाहिए।
2. **विकल्पों में से चयन (Choosing from Among Alternatives):** इस तरह के मूल्य में जब व्यक्ति के सामने एक से अधिक विकल्प होते हैं तथा वह उनमें से किसी एक को चुनने के लिए स्वतंत्र होता है।
3. **विकल्पों के परिणामों के संबंध में विचारपूर्वक चयन (Choosing after thoughtful consideration of each alternative):** किसी कार्य को करने अथवा न करने का निर्णय चयन की विवेकपूर्ण प्रक्रिया है। क्षणिक आवेग या बिना सोचे–समझे कार्य का परिणाम अक्सर गलत हुआ करता है। अत:, चयन के पूर्व व्यक्ति को प्रत्येक विकल्प के परिणामों को स्पष्ट रूप से समझने की कोशिश करनी चाहिए।
4. **महत्व देना (Prizing):** जिन बातों को हम अपनी निजी जिंदगी में महत्व देते हैं। उसका अनुपालन करके हमें प्रसन्नता मिलती है, सुख प्राप्ता होता है।
5. **दृढ़तापूर्वक स्वीकार करना (Affirming):** हम जिन मूल्यों का चयन अपने आदर्शों के अनुसार करते हैं। तब आवश्यकता पड़ने पर दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं।
6. **चयन की क्रियान्विति (Acting Upon Choice):** मनुष्य न केवल हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं, बल्कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्वयं द्वारा महत्वपूर्ण मानी गयी बातों के बारे में अध्ययन करते हैं तथा उन पर समय, धन एवं शक्ति भी खर्च करते हैं। उन समूहों एवं संगठनों से जुड़ना अच्छा लगता है, जो हमारे मूल्य पोषित करते हैं।
7. **पुनरावृत्ति (Repeating):** मूल्यों में स्थायित्व होता है। तब जीवन के अलग–अलग समय तथा परिस्थितियों में भी उनकी अभिव्यक्ति तथा पुनरावृत्ति होने लगती है।

2.4 मूल्य प्रणाली के रुप में संस्कृति एवं सभ्यता (Culture and Civilization in form of Value System)

प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए मूल्य प्रणाली (Value System) रखता है। यह जीवन के बढ़िया अथवा घटिया होने का प्रमाण निर्धारित करता है। प्रत्येक समाज में एक मूल्य–प्रणाली विकसित होती है, जिसमें उस समाज का सभ्यता एवं संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ये मूल्य ही मनुष्य के लिए आदर्श, उद्देश्य, लक्ष्य, गन्तव्य, मनोरथ एवं साध्य बनते हैं और वह जीवन को इनकी प्राप्ति के लिए लगा देता है। मूल्य ही जीवन को सार्थक बनाते हैं। मूल्य ही मनुष्य के मन में विश्वास, श्रद्धा, प्रेरणा, वफादारी, जिम्मेदारी, कर्त्तव्य भावना आदि उत्पन्न करते हैं। मनुष्य अपने जीवन दृष्टिकोण को मूल्य के आधार पर आधारित करता है। यदि जीवन से प्रेम, सुंदरता, न्याय, सत्य, मित्रता वगैरह निकाल दें, तो यह एक निरर्थक कार्यचक्र बन जायगा। मूल्य ही मनुष्य के जीवन को अर्थ, आकर्षण, उच्चता तथा श्रेष्ठता प्रदान करते हैं।

जब मनुष्य किसी मूल्य को सीख लेता है, तब वह मूल्य संगठित रुप में मूल्य–प्रणाली में रुपांतरित हो जाता है। इस मूल्य प्रणाली में प्रत्येक मूल्य अन्य मूल्यों के संदर्भ में प्राथमिकता के क्रम में व्यवस्थित होते हैं। किसी व्यक्ति के परिवर्तित व्यवहार का कारण उसके मूल्य प्राथमिकता के क्रम में व्यस्थित होते हैं। किसी व्यक्ति के परिवर्तित व्यवहार का कारण उसके मूल्य प्राथमिकता के क्रम में परिवर्तन से होता है। इस तरह के मूल्य–प्रणाली में पर्याप्त स्थायित्व होता है। इससे किसी विशिष्ट समाज व संस्कृति में समाजीकृति अनोखे व्यक्तित्व की समानता एवं निरंतरता की जानाकरी होती है। वैयक्तिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक अनुभवों में भिन्नता के कारण भी

मूल्य–प्रणाली में वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है। इन वैयक्तिक विभिन्नताओं के लिए व्यक्ति विशेष का साथ पूर्ण या अंश तादात्मीकरण, धार्मिक आस्था, लालन–पालन शैली, संस्थागत सांस्कृतिक मूल्यों का अभ्यंतरीकरण, बौद्धिक विकास, समाज की मांग आदि उत्तरदायी है। सभी मनुष्यों के मूल्य–प्रणाली समान नहीं होते है और दो या दो अधिक मूल्यों में विरोध भी संभव है।

2.4.1 संस्कृति एवं सभ्यता की भूमिका (Role of Culture and Civilization)

सभ्यता एवं संस्कृति सामाजिक मूल्यों (Social Value) का सबसे बड़ा स्रोत (Source) है। वास्तव में, संस्कृति जीवन जीने का तरीका अथवा कला है। यह कला सदियों तक जमा होकर उक्त समाज में छाया रहता है। संस्कृति वह चीज है जो हमारे जीवन में व्यापत है तथा जिसकी विकास एवं रचना सदियों में होता है। संस्कृति शब्द से उन सभी मानवीय चेष्टाओं की अभिव्यक्ति की जाती है, जो धार्मिक, आध्यात्मिक, लौकिक, राजनीतिक गतिविधियों के कारण परम्परा का रूप धारण कर लेती है। संस्कृति के निर्माण में मूल परिस्थितियाँ, सामाजिक–व्यवस्था, नैसर्गिक नियम, प्राकृतिक प्रभाव आदि गुण सहायक होते हैं। इन गुणों कर्मों का मानवीय मन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है, जिसे संस्कार भी कहते हैं। यही प्रभाव समुदाय विशेष के रहन–सहन, बोल–चाल, कला आदि में भी उत्कृष्ट रुप में दिखाई देता है। अलग–अलग सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों के मूल्यों में भिन्नता मिलती है। उदाहरणार्थ, भारतीय समाज में हिन्दुओं के विवाह में एक विशिष्ट सामाजिक मूल्य, विवाह को पवित्र एवं धार्मिक बनाता है, जिसे इच्छानुसार तोड़ा नहीं जा सकता है। इस पवित्रता को बनाए रखने के लिए पति–पत्नी एक–दूसरे के वफादार रहते हैं। इन मूल्यों का सामाजिक प्रभाव के रुप में हिन्दुओं में विवाह–विच्छेद की भावना कम पनपती है तथा विधवा–विवाह को उचित नहीं माना जाता है क्योंकि विवाह स्त्री–पुरुष के बीच न मानकर दो आत्माओं का मिलन माना जाता है। वहीं अंग्रेजी संस्कृति में विवाह दो व्यक्तियों यानि स्त्री–पुरुष के बीच का निजि संबंध (Personal relation) हैं। यहाँ विवाह–विच्छेद (Divorce), पुनः विवाह (Re marriage), या विधवा–विवाह को निंदनीय नहीं माना जाता है। वही मुस्लिम समाज में एक से अधिक पत्नियों का रिवाज है, अतः हम देखते हैं कि सामाजिक मूल्य एवं मापदंड (Social Values and Standards) हमारे जीवन के अंतसंबंधों को परिभाषित करने में सहायक होते हैं। इस संबंध में अलग–अलग विचारकों ने अपने विचार कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं; **श्री मैक्स वेबर (Max Weber)** के अनुसार, "मूल्य–निर्णयों (Value Judgement) के इस आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन क्षेत्र से पृथक नहीं किया जा सकता है कि वे प्रतितिक (Subjective) हैं और उनका संबंध मानव की भावनाओं से है। ऐसी अनेक सामाजिक घटनाएँ हैं, जिनका बोध युक्तिसंगत (rational) या प्रत्यक्ष निरीक्षणत्मक (direct observational) पद्धति द्वारा सम्भव नहीं है। इन घटनाओं (Phenomenal) पद्धति द्वारा सम्भव नहीं है। इन घटनाओं (phenomenal) को समझने के लिए कर्त्ता के उद्देश्यों तथा उन उद्देश्यों में अंतनिर्हित मूल्यों के संबंध में जानकारी आवश्यक है। "दुर्खीम (Durkheim) ने सामाजिक मूल्य व आदर्शो पर अधिक जोर दिया। इसके अनुसार, "मूल्य की विवेचना एक सामाजिक तथ्य (Social fact) के रुप में ही करनी चाहिए। सामाजिक तथ्य, व्यवहार (विचार, अनुभव या क्रिया) का वह पक्ष है, जिसका निरीक्षण वैषयिक रुप में सम्भव है और वह एक विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है। **दूर्खीम** के अनुसार, सामाजिक तथ्य की भांति सामाजिक मूल्यों की दो प्रमुख विशेषताएँ होती हैं। (1) बाह्यता (exteriority) और बाध्यता (constraint)। हालांकि मूल्य समाज के सदस्यो ंकी मानसिक अंतःक्रियाओं का फल है, परन्तु मूल्यों के अनुसार व्यक्ति का मस्तिष्क कार्य करता है। व्यक्ति की परिधि से स्वतंत्र सामाजिक मूल्य अपनी सत्ता रखते हैं। इस तरह सामाजिक मूल्यों में बाह्यता होती है। सामाजिक मूल्य व्यक्ति विशेष का न होकर, पूरे समाज का मूल्य होता है। अतः, यह व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करता है और व्यक्ति को एक विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य करता है। व्यवहार करने की बाध्यता ही सामाजिक मूल्य की बाध्यता है। इसी प्रकार, **जॉनसन (H.M. Johnson)** के अनुसार मूल्यों द्वारा सभी चीजों का मूल्यांकन किया जा सकता है, चाहे वे भावनाएँ हो या विचार, क्रिया, गुण, वस्तु, समूह, लक्ष्य या साधन हों। मूल्यों का आधार उद्वेगात्मक (emotional) होता है। मूल्य समाज के सदस्यों के उद्वेगों को अपील करता है तथा इसी आधार पर जीवित भी रहता है। व्यक्ति जब किसी विषय पर विचार करता है तो उस पर निर्णय

लेने के लिए उसका मूल्यांकन करता है। उदाहरणस्वरुप, हिन्दुओं में विवाह संबंधी एक दृढ़ मूल्य अंतःविवाह (endogamy) है। इस सामाजिक मूल्य के अनुसार व्यक्ति को अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह करना चाहिए। जबकि अंतर्जातीय विवाह (intercaste marriage) चर्चा का विषय बनती है। (According to H.M. Johnson, value may be defined a conception or standard, cultural or merely personal, by which things are compared and approved or disappoved relative to one another held to be relatively desirable or undesirable, more meritorious, or less, more or less correct"). **जॉनसन** ने लिखा है कि मूल्य व्यक्तित्व को या सामाजिक अंतःक्रिया की व्यवस्था (System of Social Interaction) को संगठित करने में सहायक होता है। मूल्य कुछ सामान्य सामाजिक आदर्श, लक्ष्य या नीतियों को सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठित करता है, जिसके फलस्वरूप सामाजिक संघर्ष की संभावनाएँ या सामाजिक जीवन की अनिश्चिताएँ कम हो जाती है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों या विभिन्न कार्यकलापों (activities) से संबंधित विभिन्न प्रकार के मूल्य होते हैं।

मानव–संस्कृति का विकास दीर्घकाल में और कई चरणों में हुआ है। चुँकि मानव–सभ्यता (civilization) का विकास अलग–अलग भौगोलिक स्थानों पर होने के कारण, उक्त स्थान की धरातलीय विषमता, जलवायकि कठोरता (रेगिस्तान, पर्वतीय, पठारीय आदि), यातायात के साधनों का अभाव आदि के कारण विभिन्न संस्कृतियों का विकास हुआ। इसी के अंतर्गत भूमध्य सागर के समीप स्थित देशों में भी सभ्यता का तेजी से विकास होने लगा। इस प्रकार पश्चिमी एशिया तथा दक्षिणी यूरोप (यूनान तथा रोम) में महत्वपूर्ण सभ्यताएँ विकसित हुई। इनके अतिरिक्त विश्व के कुछ अन्य भागों तथा मध्य अमेरिका (माया सभ्यता), दक्षिणी अमेरिका (इंका सभ्यता) अफ्रीका आदि प्रदेशों में भी मानव सभ्यताओं का विकास हुआ था। इन्हीं अलग–अलग सभ्यताओं में अलग–अलग संस्कृतियों का उद्‌भव हुआ। प्राचीन विश्व के प्रमुख सांस्कृतिक स्थल में, 1. मेसोपोटामिया संस्कृति, 2. सिंधु घाटी सभ्यता या संस्कृतिक स्थल, 3. ह्वांग हो घाटी सांस्कृतिक स्थल, 4. बनील घाटी संस्कृति, 5. ईजियन–यूनानी संस्कृति, एवं 6. अफ्रीकी सूडान संस्कृति। इनके अलावा नवीन विश्व में कुछ अन्य स्थलों पर भी नवीन संस्कृति ने जन्म दिया। जिसमें है– 1. मध्य अमेरिका (यात्रा) सांस्कृतिक स्थल तथा 2. पेरु–एण्डीज संस्कृति भी सम्मिलित है।

इस प्रकार, सभ्यता तथा संस्कृति का व्यक्ति के जीवन में, उसके मूल्यों के निर्धारण में अभूतपूर्ण योगदान है।

2.5 सारांश (Summary)

इस पाठ के माध्यम से हमने मूल्य–प्रणाली को विस्तार से जाना। मूल्य–प्रणाली के विकास में मूल्य की अवधारणा कैसे अपनी छाप छोड़ती है; अतः मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा जानना आवश्यक था, जिसकी वजह से इस पाठ में मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा की व्याख्या किया गया है। साथ ही मूल्य के महत्व को भी समझाया गया है। मूल्य के महत्व को समझने के लिए, इसकी प्रकृति को समझना आवश्यक था, अतः मूल्य की प्रकृति का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है। जबकि मूल्य की प्रकृति का विशद वर्णन अगले पाठ में किया जाएगा। इस पाठ के अंतर्गत मूल्य निर्माण में संस्कृति एवं सभ्यता के योगदान की विशुद व्याख्या की गई है। किस प्रकार अलग–अलग भौगोलिक भूभागों में अलग–अलग सभ्यताओं का विकास हुआ। इन सभ्यताओं के बीच कुछ बुनियादी भिन्नताएँ थी, सांस्कृति भिन्नताओं का सीधा प्रभाव व्यक्ति के मूल्य निर्धारण पर पड़ता है। तभी एक–ही परिस्थितियों में अलग–अलग व्यक्तियों की प्रतिक्रिया भिन्न होती है। इन सारी बातों की चर्चा इस पाठ में है। अतः आशा है कि यह पाठ छात्रों के लिए उपयोगी साबित होगी।

2.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. मूल्य की अवधारणा क्या है? मूल्य का महत्व बताएँ?
   What is the concept of value? Explain the importance of value.
2. मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया को समझाएँ।
   Explain the process of determining value.

3. मूल्य–प्रणाली के रुप में सभ्यता एवं संस्कृति की भूमिका की व्याख्या करें।
   Explain the role of culture and civilization in the form of value system.
4. मूल्य–प्रणाली की विवेचना करें।
   Discuss the value-system.

2.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. कुमार, ईश्वर चंद्र (2007), बौद्धिक समाज की चुनौतियाँ, बिहार पेंशनर समाज, पाटिलपुत्रा, पटना।
2. दुबे 'शरतेन्दु' सत्यनारायएा, (मूल्य–शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद)
3. सक्सेना, एन०आर०स्वरुप, (2005) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।
4. सिंह, ओ० पी० (2008), शिक्षा का दार्शनिक आधार, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
5. सांकृत्यापकन, राहुल, (2002), दर्शन दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद।
6. मौर्य, एस० डी० (2010), मानव एवं आर्थिक भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

इकाई:3 व्यवहार विज्ञान में मूल्यों की अवधारणा
(Concept of Values in Behavioural Science)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

3.0 उद्देश्य (Objective)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 व्यवहार विज्ञान में मूल्यों की अवधारणा (Concept of Values in Behavioural Sciences)

3.3 मूल्यों की प्रकृति (Nature of Values)

3.4 मूल्यों के स्रोत (Sources of Values)

3.5 मूल्यों के निर्धारक (जैविक, सामाजिक, मनावैज्ञानिक, पारिस्थितिक) – विभिन्न मात्रा में शिक्षा पर उनके प्रभाव [Determinants of Values (Biological, Social, Psychological, Ecological) Their Bearing on Education in Varying Degrees]

3.6 भारतीय संस्कृति एवं मूल्य (Indian Culture and Values)

3.7 सारांश (Summary)

3.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

3.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

3.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण:

- व्यवहार विज्ञान में मूल्यों की अवधारणा समझ सकेंगे।
- मानव–मूल्यों की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- मानव–मूल्यों के स्रोतों को समझ सकेंगे।
- मूल्यों के विभिन्न निर्धारकों तथा शिक्षा पर पड़ने वाले उनके प्रभाव के बारे में जान सकेंगे।
- भारतीय संस्कृति में मानव मूल्यों के महत्व को समझ सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

"व्यवहार विज्ञान में मूल्यों की अवधारणा" नामक इस इकाई में विद्यार्थियों को मूल्यों की अवधारणा के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी दी गयी है। व्यवहार विज्ञान के अन्तर्गत मुख्य रूप से समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा मानवशास्त्र आता है जो मूल्यों की अनेक अवधारणाओं को अपने में समाहित करता है। मूल्यों की अपनी प्रकृति होती है जो अच्छा–बुरा, सही–गलत या वांछित–अवांछित व्यवहार के बीच अंतर स्थापित करने का काम करती है। परिवार, परिवेश, संस्कृति, विद्यालय, धर्म, साहित्य, समाचार–माध्यम तथा व्यवहारिक जीवन के अनुभव इन

जीवन मूल्यों के स्रोत होते हैं। जीवन मूल्यों के कतिपय निर्धारक होते हैं जिनमें प्रमुख हैं– जैविक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और पारिस्थितिक। इन सभी निर्धारकों का प्रभाव बालक की शिक्षा पर पड़ता है जो कि अपेक्षित है। अतः इस इकाई में इन्हीं बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

3.2 व्यवहार विज्ञान में मूल्यों की अवधारणा (Concept of Values in Behavioural Science)

व्यवहार विज्ञान के अन्तर्गत मानव व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह बताता है कि किसी परिस्थिति में मानव कैसा व्यवहार करता है और उसे किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। किसी व्यक्ति या समूह द्वारा की जाने वाली क्रिया या प्रतिक्रिया का अध्ययन व्यवहार विज्ञान के क्षेत्र में आता है। मुख्य रूप से यह मानवशास्त्र, समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान के अध्ययन पर केन्द्रित होता है। स्वस्थ मनोवृत्ति (Healthy Attitude) एवं कार्यकुशलता का विकास इसका प्रमुख उद्देश्य है।

'मूल्य' शब्द का प्रयोग जब किसी वस्तु के लिए किया जाता है तो उसका तात्पर्य उस वस्तु की कीमत या दाम से होता है जो कि उसकी उपयोगिता या महत्व को दर्शाता है। 'मूल्य' शब्द का प्रयोग जब 'मानव–मूल्यों' (Human Values) के सन्दर्भ में किया जाता है तो इसका तात्पर्य इन गुणों, आदर्शों या सिद्धांतों से है जिसमें समाज की विशेष आस्था हो। क्षमा, दया, प्रेम, आदर, शिष्टाचार, सहयोग, सहानुभूति, सत्य और न्याय के प्रति झुकाव वैसे गुण या आदर्श हैं जिन्हे मानव–मूल्यों की श्रेणी में रखा जाता है।

मानव मूल्यों से तात्पर्य उन वांछित गुणों से है जिसके विकास की संभावना किसी व्यक्ति में समाहित होती है। ये गुण हैं जिनके विकास से एक मनुष्य मानव बनता है और उन महान गुणों के उत्तरोत्तर विकास से वह महामानव के रूप में विख्यात होता है। यदि किसी व्यक्ति में उन महान गुणों का विकास नहीं हुआ तो जैविक रूप से तो वह मनुष्य ही कहलाता है, परंतु वह 'सामाजिक प्राणी' (Social Animal) होने की परिभाषा पर खरा नहीं उतरता। 'मूल्य' वह अवधारणा है जो मानव जीवन की विविधतापूर्ण परिस्थितियों में उसके सामाजिक, मानसिक, व्यवहारिक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है। 'मूल्यों' की संकल्पना को परिभाषित करना कठिन होता है क्योंकि जीवन की विविध और जटिल परिस्थितियों में अनेक विरोधाभास उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिए **पाउल रुबिकेज (Paul Roubickez)** ने लिखा कि – "मूल्यों के क्षेत्र में अन्तर्विरोध तो दस्तूर है।" (In the sphere of values, contradictions are the rule).

मानव जीवन एक बहुआयामी (Multidimensional) जीवन होता है जिसमें जीवन–मूल्यों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये मूल्य हमारे जीवन में अनेक प्रकार से कार्यान्वित होते हैं। समाज, संस्कृति, शासन, राजनीतिक संस्था, आर्थिक सुव्यवस्था, धर्म–सम्प्रदाय, पंथ और व्यक्तिगत जीवन–शैली आदि समाज के विभिन्न तत्वों में मूल्य व्याप्त हैं। जीवन मूल्यों का गहरा सम्बन्ध नैतिकता से है। यह न्याय और अन्याय, अच्छा और बुरा, सम्मान और अपमान के बीच भेद स्थापित करता है। मूल्य यह बताता है कि 'क्या होना चाहिए'।

समाजशास्त्र (Sociology) में मूल्य एक प्रकार का मानदण्ड है, पर साधारण मानदण्ड को हम मूल्य नहीं कहते हैं। जो उच्च कोटि के मानदण्ड होते हैं उन्हे ही **जॉनसन** ने मूल्य कहा है। **जॉनसन (Johnson)** के अनुसार– "मूल्य सामान्य आदर्श हैं और इन्हे उच्च स्तरीय मानदण्ड कहा जा सकता है।" (Values are general standards and may be regarded as higher-order norms) जो मानदण्ड समाज के लिए अधिक आवश्यक या सबसे अधिक वांछनीय है उसे ही मूल्य कहा जाता है। मूल्य यह बताता है कि समाज में कैसा आचरण करना है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि समाज में किस आचरण या व्यवहार को अवांछित या निन्दनीय माना जाता है। समाज में यदि कोई व्यक्ति समाज के मानदण्डों के अनुकूल व्यवहार करता है तो ऐसा माना जाता है कि इसने सामाजिक मूल्यों का आदर किया है। यदि कोई व्यक्ति सामाजिक मूल्यों के खिलाफ व्यवहार करता है तो वह निन्दा का पात्र बनता है और समाज उसे अपने तरीके और सामर्थ्य के अनुसार दण्डित भी करता है।

यह उल्लेखनीय है कि मूल्य किसी भी समाज का आदर्श (Ideals) होता है जिसके अनुसार उस समाज में लोग आचरण करते हैं। समाज के स्वरूप में भिन्नता होने के कारण अलग–अलग समाज में अलग–अलग मूल्यों को प्रधानता दी जाती है। जिस समाज का जो मूल्य होता है उसे उस समाज का आदर्श माना जाता है और

उसके प्रति उस समाज के लोगों को बीच गहरा संवेगात्मक सम्बन्ध होता है। उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म को मानने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति एवं परम्परा के अनुसार व्यवहार करता है और उसे ही अपने जीवन का आदर्श मानता है। इसी प्रकार इस्लाम धर्म को माननेवाला व्यक्ति इस्लामिक परम्परा के अनुसार व्यवहार करता है और उसके लिए वही आदर्श होता है। सामाजिक और धार्मिक रीति–रिवाज भी समय एवं युग परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं और फिर नये नीति–नियम, आचार–व्यवहार या परम्परा का पालन आवश्यक माना जाता है।

मनोविज्ञान (Psychology) व्यवहार एवं मस्तिष्क के अध्ययन का विज्ञान है जो कि चेतन एवं अचेतन सभी प्रकार के अनुभव की व्याख्या करता है। मानवतावादी सिद्धांत के मनोवैज्ञानिक मानते है कि मनुष्य में मानवतावादी गुण जैसे– आदर्श, मूल्य, प्रेम, लज्जा, कला, उत्साह, हँसी, रोना, दुःखी, सम्मान, ईर्ष्या आदि स्वाभाविक रूप से पाये जाते हैं जो कि अन्य प्राणियों में नहीं पाया जाता है। ये ऐसे गुण हैं जिनका विकास अन्य प्राणियों में नहीं होता है या बहुत कम मात्रा में होता है। गीत गाना, कविता–पाठ करना, कलाओं का प्रदर्शन करना, गणित के सवालां को सुलझाना या वैज्ञानिक खोज की प्रवृत्ति मानव में ही पायी जाती है। यह सब उच्च स्तरीय चिंतन–मनन की क्षमता एवं व्यवहार कौशल के कारण की सम्पन्न होता है। हालांकि **सिगमंड फ्रायड (Sigmond Frued)** का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त मूल–प्रवृत्तियों एवं द्वन्द्वों के आधार पर ही अचेतन, चेतन और अर्धचेतन मस्तिष्क की व्याख्या करता है। इसके अनुसार अनैतिनक इच्छाएँ चेतन से अर्धचेतन मस्तिष्क द्वारा अचेतन मस्तिष्क में भेज दी जाती है। मानव का व्यवहार परोक्ष रूप से अचेतन द्वारा नियन्त्रित होता है। **फ्रायड** के अनुसार जीवन की मूल प्रवृत्ति का एक महत्वपूर्ण पक्ष यौन–प्रवृत्ति (Sex Instinct) है जिसकी अभिव्यक्ति यौन–क्रियाओं (Sexual Activities) में होती है।

मानवतावादी सिद्धान्त के प्रतिपादक **अब्राहम मास्लो (Abraham Maslow)** ने 'आत्मपरिपूर्णता' (Self-Fulfilment) को मानव जीवन का मूल्य माना है। **मास्लो (Maslow)** के माँग–सिद्धान्त (Need Theory) का पदानुक्रम बताता है कि मानव पहले निम्नस्तरीय माँग या जैविक माँग (Biological Needs) की पूर्ति पर ध्यान देता है। जब उसकी जैविकीय माँग जैसे भूख, प्यास, वस्त्र, आवास और सुरक्षा माँग (Safety Needs) की पूर्ति हो जाती है तब वह सामाजिक माँग (Social Needs) और सम्मान माँग (Esteem Needs) की पूर्ति पर ध्यान देता है। एक सामाजिक एवं बौद्धिक प्राणी होने के नाते सामान्यतः हर व्यक्ति अपने जीवन में सफलता, प्रशंसा, प्रतिष्ठा एवं पुरस्कार प्राप्त करना चाहता है। साथ ही व्यक्ति निन्दा एवं दण्ड से बचना चाहता है। मूल्यों का सम्बन्ध विशेष रूप से समाज से होता है। समाज में जो व्यक्ति इन मूल्यों का पालन करता है उसे सम्मान मिलता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति इन सामाजिक मान्यताओं या जीवन मूल्यों की अवहेलना करता है उसे समाज में निम्न दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक माँगों की पूर्ति में 'मूल्य' सहायक होता है।

मानवशास्त्र (Anthropology) जिसके अन्तर्गत मानव के शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक और भाषाई स्वरूप का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जाता है, मूल्यों (Value) के विकास को मुख्य रूप सें संस्कृति से जुड़ा मानता है। **रूथ बेनीडिक्ट (Ruth Benedict)** ने अपने एक मानवशास्त्रीय अध्ययन से होता है। वे अपने जीवन की या समाज की हर घटना को पीछे किसी–न–किसी जादू का हाथ मानते हैं। यहाँ तक कि खेतों में फसल के अच्छा–बुरा होने के लिए भी वे जादू को ही जिम्मेवार मानते हैं। वे लोग सभी को शक की निगाह से देखते हैं। किसी पर विश्वास करना वे जोखिम भरा काम मानते है। इतने शक के बावजूद दोबू लोगों के बीज झगड़ा बहुत कत होता है। उस संस्कृति में पले बढ़े होने के कारण ईर्ष्यालू, शक्की, अविश्वासी, धोखेजाब एवं छिपाऊ का विकास होता है।

रूथ बेनीडिक्ट (Ruth Benedict) के ही एक अन्य समाज के अध्ययन से यह पता चलता है कि न्यू मेक्सिको (New Mexico) के **जूनी (Zuni)** लोग बहुत ही सहयोगी प्रकृति के होते हैं। उनके समाज में अपराध और झगड़ा शायद ही कभी देखने को मिलता है। वे लोग बहुत महत्वकांक्षी नहीं होते हैं। उनके बीच अधिकार प्राप्त करने के लिए कभी संघर्ष नहीं होता। यहाँ मालिकाना अधिकार या नेतृत्व का अधिकर किसी को जबरदस्ती दे

दिया जाता है। वहाँ पाप–पुण्य या किसी प्रकार के जादू–टोना की बात नहीं होती है। वहाँ की संस्कृति में बहुत ही सरल, उदार, विनम्र एवं सहयोगी व्यक्तित्व का विकास होता है।

उपरोक्त दो उदाहरणों से यह प्रमाणित होता है कि प्रत्येक समाज में मूल्यों का विकास वहाँ की संस्कृति के अनुरूप होता है। यही कारण है कि एक संस्कृति के लोगों का व्यक्तित्व लगभग एक प्रकार का होता है। मूल्यों का विकास हमेशा किसी–न–किसी समाज की संस्कृति के सन्दर्भ में होता है इसलिए अनेक मानव शास्त्रीय अध्ययन में इस बात की पुष्टि होती है कि मूल्यों के विकास में संस्कृति की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

समाजशास्त्र, मनोविज्ञान एवं मानवशास्त्र जैसे व्यवहार विज्ञान के साथ ही किसी देश या समाज की प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक स्थिति, भौगोलिक स्थिति और जनसंखया का वितरण भी जीवन मूल्यों को निर्धारित और प्रभावित करती है। किसी देश में यदि नीति–विहीन राजनीति का बोलबाला होगा तो वहाँ महंगाई, भ्रष्टाचार, गरीबी, क्षेत्रीय संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, परिवारवाद एवं भाई–भतीजावाद के दुष्चक्र का सामना करना पड़ता है और जीवन मूल्यों के ह्रास से वेदना और निराशा का वातावरण बनता है। ऐसे में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबंदी लगती है और सत्ता को नियंत्रित करनेवाली तानाशाही प्रवृत्ति मानव जीवन का अपमान करने लगती है। जनसंख्या के अत्यधिक दबाव से भी प्राकृतिक संसाधनों के दोहन एवं संघर्ष का सिलसिला आरंभ होता है जो पर्यावरण को क्षति पहुँचाता है। पूँजीवादी प्रवृत्ति के विकास से शोषण को बढ़ावा मिलता है और जीवन के हर क्षेत्र में बिखराव और विघटन देखने को मिलता है। इस प्रकार व्यवहार विज्ञान मूल्यों की अनेक अवधारणाओं को अपने में समाहित करता है।

3.3 मूल्यों की प्रकृति (Nature of Values)

मानव मूल्यों का स्वरूप अमूर्त होता है, जिसके अनुसार व्यक्ति समाज में व्यवहार करता है। यह अच्छा–बुरा, सही–गलत या वांछित–अवांछित व्यवहारों के बीच अंतर स्थापित करने का काम करता है। **लाईट एवं केलर (Light and Keller)** ने लिखा है कि – "मूल्य समान्य विचार हैं, जिन्हें लोग किसी चीज के अच्छा या बुरा, सही या गलत, आवश्यक या अनावश्यक होने के रूप में देखते हैं।" ("Values are the general ideas people share about what is good or bad, right or wrong, desirable or undesirable.") इसलिए मूल्यों की प्रकृति को हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं:–

1. **मूल्य का स्वरूप अमूर्त होता है:** मूल्यों का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता, क्योंकि यह एक संज्ञात्मक तत्व (Cognitive element) होते हैं। इसका स्वरुप अमूर्त (Abstract) होता है। यह अगोचर या अदृश्य होता है। मूल्य समाज के आदर्श (Ideals) होते हैं। मूल्य सामान्यतय अलिखित होता है, परन्तु यह मनुष्य के सामाजिक व्यवहार में परिलक्षित अवश्य होता है। उदाहरण के लिए, ईश्वर सर्वशाक्तिमान और सर्वव्यापी है, यह एक प्रकार का सामाजिक मूल्य है जो कि अमूर्त है, परन्तु लोगों के सामाजिक व्यवहार में ईश्वर की पूजा, भक्ति या अपने धर्म के अनुसार आचरण स्पष्ट रूप से देखा जाता है।
2. **मूल्य सामूहित अवधारणा है:** मूल्यों का निर्माण किसी व्यक्ति के द्वारा न होकर पूरे समुदाय के द्वारा होता है। किसी भी मूल्य के निर्माण में समस्त समाज की भागीदारी होती है। हालांकि इसका निर्माण कोई नियोजित तरीके से नहीं होता है। एक लम्बे समय तक चलनेवाली अन्तःक्रिया के फलस्वरूप किसी सामाजिक मूल्य का निर्माण होता है जिसे पूरा समाज महत्व देने लगता है। इस प्रकार मूल्य सामाजिक महत्व की अवधारण है।
3. **मूल्य एक सामाजिक मानक होता है:** किसी भी समाज में उसका स्थापित मूल्य व्यवहार का उच्च स्तरीय मानक होता है। उन मूल्यों के अनुसार ही लोगों को व्यवहार करना होता है। यदि कोई व्यक्ति उन मूल्यों के अनुकूल व्यवहार करता है, तभी उसे समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त होता है। जबकि उन मूल्यों के विरुद्ध आचरण करना दण्डात्मक माना जाता है और समाज उसे किसी न किसी तरीके से

दण्डित भी करता है। इस प्रकार मूल्य एक सामाजिक मानक के रूप में कार्य करता है जिस आधार पर व्यक्ति को अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित करार दिया जाता है।

4. **विभिन्न समाजों के अलग–अलग मूल्य होते हैं:** दुनिया के विभिन्न समाजों में मूल्यों की भिन्नता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। हरेक समाज का अपने मूल्यों से गहरा संवेगात्मक लगाव होता है और उस अनुसार आचरण को ही वह श्रेयस्कर मानता है। इन मूल्यों में भी विभिन्नता पायी जाती है और इनको विभिन्न मात्रा में स्वीकार किया जाता है। उदाहरण के तौर पर हिन्दू समाज की तुलना में जैन–समाज में अहिंसा पर अधिक जोर दिया जाता है। हिन्दू समाज भी जीव–मात्र से प्रेम का संदेश देता है, परन्तु जीव हिंसा करने वाले का जैन धर्म में कोई स्थान नहीं है। मुस्लिम समाज में मांसाहार का अधिक चलन है। हिन्दू महिला अपने सतीत्व की रक्षा हेतु अपना जान तक न्योछावर करने को तैयार रहती हैं जबकि पश्चिमी देशों में 'फ्री–सेक्स' का चलन अधिक है और वहाँ एक से अधिक पुरुष या स्त्री से संबंध रखना घृणा का विषय नहीं माना जाता है।

5. **मूल्य सामाजिक एकता स्थापित करने में सहायक होता है:** किसी भी समाज में समान मूल्य को मानने वाले लोग एक–दूसरे से भावात्मक रूप से जुड़े होते हैं और वे लोग समान परिस्थितियों में समान व्यवहार करते हैं। इससे उनमें सामाजिक एकता स्थापित होती है। वे सामाजिक मूल्यों की रक्षा के लिए एक साथ मरने–मारने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। मूल्यों की यही एकता कभी जातीय कट्टरता तो कभी धार्मिक–साम्प्रदायिक उन्माद के रूप में भी सामने आता है। किसी देश पर विदेशी हमला होने पर भी सारे आपसी भेद–भाव भुलाकर लोग मूल्यों की रक्षा हेतु मर–मिटने को तैयार हो जाते हैं।

6. **मूल्यों की महत्ता भी अलग–अलग होती है:** किसी भी देश या समाज का तमाक मूल्य एक समान महत्व का नहीं होता। कुछ मूल्यों की महत्ता अधिक तो कुछ मूल्यों की महत्ता कम भी होती है। उदाहरण के लिए, हिन्दुओं को प्रतिदिन भगवान को याद करना चाहिए, इस मूल्य का पालन नहीं करने पर भी कोई कठिनाई या विरोध नहीं होता, जबकि दूसरे जाति में शादी–विवाह करने पर विरोध एवं उपहास का सामना करना पड़ता है। भारतीय समाज में पर–पुरुष या दूसरी महिला से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना अत्यधिक आपत्तिजनक माना जाता है और समाज में ऐसे लोगों को कड़ी से कड़ी सजा दी जाती है। इस प्रकार मूल्यों को उसकी महत्ता के आधार पर श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।

7. **मूल्य चिर–स्थायी नहीं होता:** मूल्य भी परिवर्तनशील होता है। यह सही है कि मूल्यों में परिवर्तन आसानी से नहीं होता है। कोई भी समाज जिस नीति, नियम या मूल्य को महत्व देता है, उसकी रक्षा की भरपूर कोशिश करता है, परन्तु समय और परिस्थिति में परिवर्तन के साथ उन मूल्यों में भी धीरे–धीरे बदलाव आ जाता है। एक समय तक भारतीय हिन्दुओं में यह धारणा थी कि समुद्री यात्राएँ करने से धर्म नष्ट हो जाता है, परन्तु आज यह मान्यता पूरी तरह समाप्त हो चुकी है। मध्यकाल में जब विदेशी आक्रमण बार–बार होने लगे तो भारत में स्त्रियों को पर्दा में छुपाया गया, परंतु समय और परिस्थितियाँ बदलने के साथ स्त्रियों ने पर्दे को त्याद दिया है। मुस्लिम स्त्रियों में पर्दे का चलन अब भी अपेक्षाकृत अधिक है, परंतु वे भी धीरे–धीरे पर्दे को त्यागकर मर्यादा में रहकर विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रही हैं। एक समय था जब भारत में किसी भी बात को धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य की कसौटी पर आँका जाता था। लोग कुछ भी गलत करने से डरते थे। स्वर्ग–नरक का विचार उन्हें बार–बार गलत करने से रोकता था। किन्तु आज भौतिकता के दौर में ज्यादातर लोग शक्ति और धन हासिल करने के लिए कुछ भी गलत करने से नहीं हिचकते।

8. **मूल्यों में परस्पर विरोधाभास भी होता है:** कभी–कभी एक मूल्य दूसरे मूल्य के विरोधी भी होते हैं। पारिवारिक–सामाजिक सम्बन्धों में अनेक जटिलताएँ होती हैं और उन जटिलताओं के साथ समाज का स्वरूप जितना बड़ा होता है वहाँ मूल्यों के बीच संघर्ष भी उतना ही अधिक होती है। भारत भी प्राचीनकाल से ही अनेक मूल्यों एवं आदर्शो को अपने में समेटे विविधताओं से भरा देश रहा है। एक धर्म–प्रधान देश

होने के नाते भारत में सच्चाई, ईमानदारी, परोपकारी और सहिष्णुता की शिक्षा शुरू से दी जाती है किन्तु आज के भौतिकवादी दौर में आदमी उन तमाम मूल्यों को नकार कर धन संग्रह में लग जाता है। व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति में लिप्त होकर लोग कुछ भी गलत करने पर आमादा हो जाते हैं। भारत में अपने से बड़ों का आदर करना, माता–पिता को भगवान–तुल्य समझकर उनकी सेवा करना जीवन के मूल्यों में शामिल है, जिसकी सीख आरंभ से बालक को दी जाती है। वही बालक जब वास्तविक जीवन में अपने से बड़े को भ्रष्ट आचरण में लिप्त पाता है तो उनके प्रति आदर समाप्त हो जाता है। माता–पिता को भी जब बात–बात में पक्षपात करते या किसी के साथ झूठ बोलते या बेईमानी करते हुए देखता है तो उसके मन में घृणा पैदा होने लगती है। एक ओर माता–पिता को देवी–देवता मानकर पूजने का आदर्श तो दूसरी ओर अत्याचार, अन्याय, अधर्म के प्रति विद्रोह का द्वन्द्व उसे उलझाकर रख देता है। अक्सर देखा जाता है कि धार्मिक कट्टरता के उन्माद में फंसकर हम धार्मिक संदेशों को भुला देते हैं और हिंसा पर उतारू हो जाते हैं।

9. **मूल्य सामाजिक नियन्त्रण का एक साधन है:** किसी भी समाज में व्यक्ति का व्यवहार उसके मूल्यों से निर्धारित होता है। मूल्य सामाजिक नियन्त्रण का एक उदाहरण है जिसके माध्यम से कोई भी समाज अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करता है। मूल्य यह स्पष्ट करता है कि कौन सा व्यवहार सही और कौन गलत, किस व्यवहार के लिए प्रशंसा मिलेगी और किस व्यवहार के लिए निन्दा की जाएगी। इस प्रकार उचित और अनुचित के बीच, वांछित और अवांछित व्यवहार के बीच मतभेद बताने का काम ये मूल्य करते हैं। इतना ही नहीं मूल्यों के अनुकूल व्यवहार करने पर समाज अपने सदस्यों को किसी–न–किसी रूप में पुरस्कृत करता है और मूल्यों के विरुद्ध आचरण करने पर समाज अपने सदस्य को किसी–न–किसी रूप में दण्डित भी करता है। इस प्रकार सामाजिक मूल्य इसके सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित करने का एक माध्यम होता है।

10. **मूल्यों में समाज कल्याण की भावना होती है:** मूल्यों में सामाजिक कल्याण की भावना छिपी होती है। समाज अपने मूल्यों में अटूट विश्वास रखता है और मानता है कि सामाजिक मूल्यों से समाज के हित की रक्षा होती है। मूल्य सामाजिक संरचना को बनाए रखने में मदद करता है। यदि मूल्यों में बिखराव आता है तो समाज में भी विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। जितने भी नियम, कानून या धर्म बने हैं, उन सबके मूल में जन–कल्याण होता है। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि धर्म भी मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य धर्म के लिए। लेकिन धर्म या मूल्य की गलत व्याख्या के कारण ही 'ऑनर किलिंग' का मामला अक्सर सामने आ जाता है। यह भी मूल्यों के टकराव के कारण होता है। एक तरफ अपनी जाति के पहचान या अपनी इज्जत की चिन्ता हावी होती है तो दूसरी ओर अपने संतान या परिवार–समाज के सदस्य की हित–चिन्ता। इस द्वन्द्व में व्यक्ति यह महसूस करने लगता है कि सामाजिक मूल्यों का उल्लंघन कर अपने समाज में या जात–बिरादरी में वह ठीक से जी नहीं पायेगा तो हिंसा पर उतारू हो जाता है और अपने बीवी, बच्चे तक की जान ले लेता है। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्या है।

11. **मूल्यों का टकराव हमेशा हानिकारक नहीं होता:** किसी भी समाज में मूल्यों का स्वरूप इतना जटिल और व्यपाक होता है कि अक्सर उनमें टकराव देखा जाता है। उदाहरण, के लिए शोषण, उत्पीड़न, अनाचार, दुराचार आदि का विरोध सामाजिक मूल्यों में शामिल है, अपने से बड़ों का आदर करना भी मूल्यों में शामिल है। किन्तु जब कोई बड़े, श्रेष्ठ ही गलत आचरण करने लगते हैं तो उनका आदर करें या विरोध मूल्यों के टकराव के कारण होता है। इस प्रकार संघर्षों का परिणाम हमेशा घातक नहीं होता; बल्कि इससे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को नयी दिशा मिलती है। सामाजिक–राजनीतिक संघर्षों के परिणाम स्परूप आधुनिक युग में अनेक सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं जिनसे सम्पूर्ण मानव समाज को लाभ मिलता है। आधुनिक युग में लोकतंत्र का उदय, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता, सार्वभौम मताधिकार, सबों को शिक्षा का अधिकार जैसे परिवर्तन विभिन्न मूल्यों में टकराव का ही परिणाम है। दासप्रथा, छुआछूत, सतीप्रथा जैसी अनेक कुरीतियों का अंत भी मूल्यों के टकराव के कारण ही संभव है।

3.4 मूल्यों के स्रोत (Sources of Values)

हमारे महत्वपूर्ण जीवन मूल्यों का विकास बहुत हद तक जीवन के आरंभिक वर्षों में माता–पिता परिवारजनों, शिक्षकों तथा मित्रों के सान्निध में हो पाता है। इन मूल्यों का विकास आस–पास के परिवेश में घटी घटनाओं एवं स्वयं के अनुभवों से जीवन पर्यन्त होता रहता है। इसके अतिरिक्स भी ऐसे अनेक स्रोत है जिनसे जीवन–मूल्यों का विकास निरंतर होता रहता है। जीवन–मूल्यों के विकास के वे विभिन्न स्रोत निम्नलिखित हैं:

1. **परिवार:** परिवार वस्तुतः बालक की पहली पाठशाला है। जीवन–मूल्यों का विकास भी परिवार से ही होता है। एक बालक जिस प्रकार का व्यवहार अपने परिवार में देखता हैं, उसका वह अनुकरण करने लगता है। एक बालक अपने माता–पिता से विशेष रूप से प्रभावित होता है और उनके बात–विचार, क्रिया–कलाप, रीति–नीति आदि को देखकर उसके अनुसार अपने जीवन–मूल्यों का विकास कर लेता है। इतना ही नहीं परिवार के वातावरण में वह अपने भाई–बहन, सगे–सम्बन्धियों के परस्पर व्यवहार से, उनके उठने–बैठने, बोलने–चलने, खाने–पीने, कपड़े पहनने के तौर–तीरके से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। धीरे–धीरे एक बालक उन्हीं तौर–तरीकों को सही मानने लगता है और उसके अनुकूल अपना व्यवहार करने लगता है। इसी प्रकार जिन जीवन–मूल्यों का आदर होते वह अपने परिवार में देखता है, उसे अपनाने लगता है तथा जिन मूल्यों का तिरस्कार होते देखता है, उसका अनादर करने लगता है। इस प्रकार मानवीय मूल्यों के सकारात्मक या नकारात्मक विकाास का पहला स्रोत परिवार होता है।
2. **परिवेश:** परिवार के बाद मूल्यों के निर्माण में उस परिवेश की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है जिसमें बालक पला–बड़ा होता है। परिवेश में उसके पड़ोसी, उसके गाँव–मुहल्ला के लोग तथा उसके साथी समूह सभी सम्मिलित हैं। बालक अपनी उम्र में जिन साथियों के साथ खेलता है, उनके आचार–विचार या तौर–तरीके को भी वह जाने–अनजाने अपनाता चला जाता है। इसी प्रकार अपने पड़ोस में या आस–पास के लोगों को वह जिस प्रकार का व्यवहार करते देखता है, उससे भी वह सीख लेता है। उदाहरण के लिए किसी परिवार में बालक को परोपकार की शिक्षा दी जाती है, किन्तु अपने परिवेश में वही बालक बार–बार अपने से बड़े एवं सामर्थ्यवान लोगों को जब स्वार्थपूर्ण व्यवहार करते देखता है तो उसको महसूस होता है कि परोपकार के रास्ते पर चलकर तो वह बर्बाद हो जायेगा। ऐसी स्थिति में वह भी स्वार्थी बनता चला जाता है।
3. **संस्कृति:** हर समाज की अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है, उस समाज के लोगों की मनोवृत्ति (Attitude), विचार, व्यवहार, आदर्श एवं जीवन के मूल्य भी उसी दिशा में विकसित होते हैं। अनेक मानवशास्त्रीय अध्ययन इस बात को साबित करता है कि जीवन मूल्यों पर संस्कृति का गहरा प्रभाव होता है। परंतु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि एक संस्कृति के सभी व्यक्ति समान विषय पर समान विचार रखते हैं। यदि ऐसा होता तो एक संस्कृति–क्षेत्र में बसने वाले लोगों का जीवन मूल्य समान होता। फिर भी जिस संस्कृति में बालक पला–बड़ा होता है, उसका गहरा प्रभाव उसके जीवन मूल्यों में परिलक्षित होता है।
4. **विद्यालय:** विद्यालय से बालक की औपचारिक शिक्षा का आरंभ होता है। बच्चा जानता है कि विद्यालय उसके लिए सीखने का स्थान है और शिक्षकों से उसे सीखना है। ऐसे में शिक्षकों के विचार–व्यवहार, क्रिया–कलाप एवं तौर–तरीके को वह आदर्श मानकर अपनाता चला जाता है। शिक्षकों की बातों को अक्सर बच्चे गंभीरता से लेते हैं और उनके द्वारा सुझाए गए जीवन–मूल्यों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति छात्रो में होती है। यही कारण है कि विद्यालय की औपचारिक शिक्षा में मूल्यों की शिक्षा को शामिल करना उद्देश्यपूर्ण माना जाता है। विद्यालय में मूल्यों के निर्माण में शिक्षक के साथ–साथ साथी–समूह की भूमिका भी प्रमुख होती है। विद्यालय में छात्र अन्य छात्रों से भी सीख ग्रहण करता है कि क्या सही है और क्या गलत। विद्यालय में शिक्षण के अतिरिक्त अन्य गतिविधियों में भी मूल्यों का निर्माण होता रहता है।
5. **रिश्ते–नातेदारी:** कोई भी बालक या व्यक्ति अपने रिश्तेदारों से बहुत जुड़ा होता है एवं उनके अच्छे–बुरे की चर्चा भी परिवार में बराबर होती रहती है। कोई रिश्तेदार जैसा व्यवहार करते हैं उनके लिए भी व्यक्ति

उसी प्रकार का व्यवहार करने की सोच रखता है। इस क्रम में सामान्यतः जैसे को तैसा (Tit for tat) को आदर्श मूल्य या प्रतिमान मान जाता है। ऐसे में जीवन मूल्य का एक महत्वपूर्ण स्रोत रिश्ते–नातेदारी हो जाती है। अक्सर देखा गया है कि नाते–रिश्तेदारी में एक प्रतिस्पर्धी भावना के साथ–साथ ईर्ष्या भी समाहित हो जाती है। जब कोई रिश्तेदार सफल होता है तो सफलता में उसके साथ प्रतिस्पर्धा का उदय होता है। यदि कोई रिश्तेदारी अपनी रिश्तेदारी में कुछ गलत करता है तो उसके प्रति भी वैसा ही व्यवहार उचित माना जाता है। इस प्रकार रिश्तेदार का व्यवहार भी जीवन–मूल्यों के निर्माण में सहायक होता है।

6. **समाचार–माध्यमः** सूचना–सम्प्रेषण के आधुनिक युग मे समाचार माध्यम भी मूल्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। आज का शायद ही कोई व्यक्ति प्रिंट मिडिया या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के पर्याप्त सम्पर्क में नहीं है। पत्र–पत्रिका, रेडियो, टीवी, मोबाइल या इन्टरनेट के माध्यम से व्यक्ति नित्य नयी घटनाओं की जानकारी प्राप्त करता रहता है। अपने आस–पास या दुनिया के किसी भी घटना पर व्यक्ति जब चिंतन–मनन करता है तो उसमें भी जीवन के लिए कुछ संदेश छुपा रहता है। किसी भी घटना में छुपे विभिन्न संदेशों को व्यक्ति ग्रहण करता है और उसके अनुसार वह आचरण करने को प्रेरित होता है। इस प्रकार समाचार माध्यम मानव–मूल्यों के निर्माण का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।
7. **संगठनः** व्यावसायिक जीवन या सामाजिक जीवन में व्यक्ति जिस संगठन या समूह का सदस्य होता है, उसकी विचारधारा से भी वह प्रभावित होता है। हर संस्था या संगठन का कुछ अपना सिद्धांत या उसूल होता है जिसे उसके सदस्य जीवन–मूल्य के रूप में स्वीकार करते हैं और उसके अनुसार आचरण करना श्रेयस्कर मानते हैं। हर संगठन का अपना विशेष स्वरूप होता है चाहे वह सरकारी हो या निजी और उसका कुछ अपना उद्देश्य भी होता है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कुछ नीति या नियम बनाये जाते हैं और एक प्रकार के कार्य–संस्कृति का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया में संगठन भी मानव–मूल्यों के निर्माण का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है।
8. **साहित्यः** एक बालक या व्यक्ति जिस प्रकार के साहित्य का अध्ययन करता है, जिस प्रकार की कहानी सुनता है या ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में जानता है, उससे भी उसके जीवन–मूल्यों का निर्माण होता है। यही कारण है कि बालक एवं युवाओं को अच्छी साहित्य पढ़ने का सुझाव दिया जाता है। सनातन साहित्य में असत्य पर सत्य की विजय को प्रमुखता से दर्शाया जाता है। इस प्रकार जातक–कथाओं में समस्त मानवीय गुणों को कहानी के माध्यम से रखा जाता है। इन्हें पढ़ने–सुनने से भी श्रेष्ठ मानव–मूल्यों का विकास होता है।
9. **व्यक्तिगत–अनुभवः** व्यक्तिगत जीवन में घटी घटनाएँ या अन्य प्रकार के व्यक्तिगत अनुभव भी मूल्यों के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यही कारण है कि एक अच्छे विद्यालय में पढ़ने वाला बालक जिसने प्रारंभ में अच्छी शिक्षा ग्रहण किया है, अच्छा साहित्य का अध्ययन कर उच्च कोटि के जीवन–मूल्यों को ग्रहण किया है वह भी जब अपने व्यावहारिक जीवन में उन मूल्यों को अनुपयोगी और बेकार महसूस करता है तो उसे त्यागकर अलग व्यवहार करने लगता है। उसे महसूस होता है कि किताबों में लिखी बातें अच्छी तो हैं परन्तु व्यवहारिक में प्रवेश लेता है और वहाँ एक नामांकन फॉर्म खरीदने से लेकर हर जगह जब नाजायज पैसा देना पड़ता है, प्रायोगिक विषयों में अच्छा अंक पाने के लिए रिश्वत देना पड़ता है, जब विश्वविद्यालय के या सरकारी कार्यालय के कर्मचारी बिना घूस के काम नहीं करते हैं तो 'ईमानदारी सर्वोत्तम नीति' से उसका भरोसा उठ जाता है। इसी प्रकार बाल्यकालय से ही "मातृदेवो भवः, पितृ देवो भवः" का आदर्श ग्रहरण करनेवाला बालक जब अपने माता–पिता के चरित्र, विचार एवं व्यवहार में भेदभाव और बेईमानी देखता है तो उसके मन में माता–पिता के प्रति अच्छा भाव नहीं रह जाता है।
10. **व्यावसायिक स्थितिः** कोई भी व्यक्ति जिस व्यवसाय से जुड़ा होता है, उस व्यवसाय की प्रकृति भी उसके मूल्यों को निर्धारित करने में बहुत सहायक होती है। उदाहरण के लिए, सैन्य सेवा को अपनाने वाला अधिकतर व्यक्ति ईमानदारी और हिम्मत से काम लेता है, वहीं पुलिस विभाग में काम करने वाले अधिकतर

(सभी नहीं) व्यक्ति को रिश्वतखोरी में लिप्त पाया जाता है। कुछ व्यवसाय में झूठ बोलने की आवश्यकता महसूस नहीं होती और उस व्यवसाय से जुड़े लोग बहुत कम झूठ बोलते हैं, जबकि कुछ व्यवसाय में झूठ बोलना आवश्यक माना जाता है और उस व्यवसाय से जुड़े लोग धड़ल्ले से झूठ बोलते हैं।

11. **राजनीतिः** किसी भी देश का राजनैतिक आदर्श वहाँ के नागरिकों के लिए जीवन–मूल्यों के निर्माण का एक प्रमुख स्रोत होता है। तानाशाही या साम्यवादी देशो में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता या शासन–सत्ता का विरोध सही नहीं माना जाता है। जबकि लोकतांत्रिक देशों में स्वतंत्रता का अधिकार अनिवार्य माना जाता है और शासकीय नीतियों का विरोध भी लोग मुखर होकर करते हैं। इसी प्रकार भारतीय संविधान एवं सरकार धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, समाजवाद जैसे मूल्यों को आदर्श के रूप में स्वीकार करती है जिसे यहाँ की बहुसंख्यक जनता भी समर्थन देती है। राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव के साथ धीरे–धीरे जीवन–मूल्यों में भी बदलाव महसूस किया जाता है। भारत में प्राचीनकाल से मध्यकाल तक मुख्य रूप से राजतंत्रिक व्यवस्था रही। उस समय राजा को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में मान–सम्मान दिया जाता था जबकि वर्तमान में लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रतिष्ठा दी जाती हैं
12. **इतिहासः** प्रत्येक देश या समुदाय का अपना इतिहास होता है। उस इतिहास में अनेक घटनाएँ या लोककथाएँ या किंवदन्तियाँ होती हैं जो जीवन मूल्यों के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट संदेश देती है। इन ऐतिहासिक घटनाओं में छुपे संदेश को भी लोग जीवन–मूल्यों के रूप में ग्रहण करते हैं। हजारों वर्ष पुराना भारत का इतिहास रामायण–महाभारत काल से ही अनेक कथाओं से भरा पड़ा है। इन कथाओं या ऐतिहासिक घटनाओं से अनेक संदेश निकलते हैं जो जीवन–मूल्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
13. **धर्मः** दुनिया के अधिकतर लोग किसी–न–किसी धर्म को मानते हैं। धर्म श्रद्धा और विश्वास पर आधारित होता है। सभी धर्मो के अनुयायी अपने धर्म के सिद्धान्तों एवं प्रतीकों का बहुत सम्मान करते हैं तथा उनकी रक्षा को अपने जीवन का महत्वपूर्ण उद्देश्य मानते हैं। सामान्यतः सभी धर्म नैतिक सिद्धान्तों पर चलकर जीवन जीने का संदेश देते हैं। धर्म मानव जीवन के अर्थ एवं उद्देश्य की व्याख्या करता है। धर्म जीवन के सभी पहलुओं जैसे–जीवन, मृत्यु, सुख–दुःख, पाप–पुण्य और जन्म–जन्मान्तर तक की व्याख्या करता है। मानव–जीवन की इस व्याख्या में अनेक जीवन मूल्य समाहित होते हैं, जिससे व्यक्ति का विचार और व्यवहार प्रभावित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन मूल्यों के अनेक स्रोत हैं।

3.5 मूल्यों के निर्धारक (जैविक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, पारिस्थितिक) विभिन्न मात्रा में शिक्षा पर उनके प्रभाव [Determinants of Values (Biological, Social, Psychological, Ecological) - Their bearing on Education in Varying Degress)

मानव मूल्यों को निर्धारित करने वाले अनेक कारक हैं। ये कारक मानव प्रकृति एवं उसकी परिस्थितियों से सम्बन्धित होते हैं। एक प्राणी होने के नाते मनुष्य की कुछ जैविक आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति हेतु वह मूल्य निर्धारित है। पुनः मनुष्य एक जैविक प्राणी होने के साथ–साथ सामाजिक प्राणी है जिसमें समूह में रहने एवं उनके बीच अपनी विशिष्ट पहचान बनाने की प्रवृत्ति होती है। एक विकसित एवं जटिल मस्तिष्क (Brain) होने के कारण मनुष्य के व्यवहार में भी काफी जटिलताएँ पायी जाती हैं जिनका अध्ययन मनोविज्ञान (Psychology) में किया जाता है। इनके अतिरिक्त मानव उस वातावरण से भी पूरा–पूरा प्रभावित होता है जिसके जैविक (Biotic) एवं अजैविक (Abiotic) घटकों के साथ अन्तःक्रिया करता है और व्यवहार के अपने मानक निर्धारित करता है। जीवन मूल्यों का निर्माण जीवन को श्रेष्ठ एवं मूल्यवान बनाने हेतु किया जाता है जिनके कतिपय निर्धारक होते हैं, उन्हीं निर्धारकों (Determinants) की चर्चा इस उपइकाई में की गयी है। साथ ही वे निर्धारक किस प्रकार शिक्षा को प्रभावित करते हैं, इसकी चर्चा भी इस उपइकाई में की गयी है।

जैविक निर्धारक (Biological Determinants)

अन्य जीवों की तरह मनुष्य भी एक जैविक प्राणी है जिसका अपना शारीरिक संगठन होता है और इससे जुड़ी अनेक आवश्यकताएँ होती हैं। मनुष्य की शारीरिक बनावट अन्य जीवों की तरह उसके वंशानुक्रम (Heredity) से प्रभावित होती है। वंशानुक्रम का नियम (Laws of Heredity) बताता है कि जैसे माता–पिता होते हैं, उसी प्रकार की संतान होती है। स्वाभाविक है कि जीवन को बनाए रखने एवं आगे बढ़ाने के लिए भी अनेक आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति आवश्यक होती है। ये आवश्यकताएँ उचित पोषण, वस्त्र, आवास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य हैं। इनके अतिरिक्त भी मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ हैं जिनसे उसका व्यवहार या उसका जीवन–मूल्य प्रभावित होता है।

किसी भी व्यक्ति के स्वस्थ शारीरिक विकास हेतु संतुलित भोजन, शुद्ध जल एवं स्वच्छ वायु की आश्यकता होती है। मनुष्य के शरीर में विकसित मस्तिष्क होने के कारण उसमें अद्‌भुत मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता होती है। यदि मानव में संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development) का स्तर ऊँचा नहीं होता तो उसकी आवश्यकताएँ भी सीमित होती है और वह भोजन एवं सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकता तक ही सीमित होता। परन्तु विकसित मस्तिष्क के कारण मानव जीवन का आयाम बहुत विस्तृत हो जाता है और वह अपने स्वस्थ बौद्धिक विकास, मनोरंजन एवं संतुष्टि हेतु अनेक गतिविधियों (Activities) में शामिल होता है। एक उम्र के बाद उसमें यौन–इच्छाएँ उत्पन्न होती है और यौन इच्छाओं की पूर्ति को वह बहुत प्राथमिकता देने लगता है। इन सभी आश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे अनेक प्राकर के बाह्य साधनों की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति के लिए उसे अनेक प्रकार की शारीरिक और मनासिक क्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है। उपयुक्त जीवन के निर्वाह हेतु मनुष्य को कुछ मूल्य विकसित करना पड़ता है जो कि उसकी आवश्यकता–पूर्ति में सहायक हो। जीवन–निर्वाह के इन मूल्यों में कोई भी व्यक्ति विरोधाभास तो महसूस करता है, परन्तु इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता; क्योंकि यह उसकी सुरक्षा, स्वास्थ्य, जीवन की निरंतरता एवं कुशलता से जुड़ा होता है।

इस प्रकार देखा जाता है कि जीवन मूल्यों के निर्धारकों (Determinants) में जैविक आवश्यकताओं की प्रमुख भूमिका होती है। शिक्षा का स्वरुप या पाठ्यक्रम की रचना भी इसी प्रकार से की जाती है कि बालक को एक बेहतर व्यवसाय के लिए तैयार किया जाए। गाँधी जी की "बेसिक शिक्षा" के केन्द्र में भी बालक को एक व्यवसाय हेतु तैयार करना था। विवेकानन्द की शिक्षा में भी आत्मनिर्भरता को प्रमुखता दी गयी थी, जिसका तात्पर्य व्यावसायिक शिक्षा से था। पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण ने तो भारत में नैतिक या अध्यात्मिक शिक्षा को गौण कर व्यावासयिक शिक्षा को इतना महत्व दे दिया कि जैविक आवश्यकताएँ या भौतिक विकास ही प्रमुख हो गया। बहुत से शिक्षाशास्त्री जैविक आवश्यकताओं की प्रमुखता को मानवीय मूल्यों (Human Values) के ह्रास का कारण बताते हैं। जैविक या दैहिक आवश्यकताओं को अत्यधिक प्रमुखता देने का परिणाम नैतिक एवं आध्यात्मिक ह्रास के रूप में सामने आता है। आज जीवन के सभी क्षेत्र में नैतिकता का पतन और भ्रष्टाचार का जो बोलवाला दिख रहा है, उसका कारण जैविक अथवा भौतिक आवश्यकता को अत्यधिक प्रमुखता देना है।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि आहार और प्रजनन तो जीव मात्र की आवश्यकता है, जिसकी उपेक्षा कभी नहीं की जा सकती है, परंतु हम मनुष्य हैं। बिना नैतिकता के हमारा जीवन–मूल्य ही नष्ट हो जाएगा। अतः शिक्षा में भी जीविकोपार्जन की प्रमुखता होनी चाहिए, परंतु मानव मूल्यों की शिक्षा को भी सर्वोच्च स्थान देना चाहिए। जिस शिक्षा में मानव मूल्य और आदर्श जीवन के विचार समाहित न हों, उसे शिक्षा नहीं कही जा सकती है। शिक्षा का उद्देश्य कभी भी सिर्फ शारीरिक विकास नहीं हो सकता है। सर्वांगीण विकास के अन्तर्गत नैतिक, आध्यात्मिक और चारित्रिक विकास का समावेश भी आवश्यक है।

सामाजिक निर्धारक (Social Determinants)

मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी होता है और सम्प्रेषण (Communication) की अद्‌भुत क्षमता के कारण उसमें सामाजीकरण (Socialization) की अद्वितीय क्षमता होती है। प्राचीनकाल में ही **अरस्तु** ने कहा था– "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" ("Man is a social animal") मनुष्य की आवश्यकताएँ, इच्छाएँ एवं भावनाएँ उसे सामाजिक

अन्तःक्रियाओं के लिए अग्रसर एवं प्रेरित करती हैं। मनुष्य यदि एकल प्राणी होता तो व्यवहार के इतने तौर–तरीके, नियम, आदर्श, रीति, नीति एवं मूल्यों का विकास ही नहीं होता। सच पूछिए तो मूल्यों के विकास में सामाजिक सन्दर्भ सर्वप्रमुख है। व्यक्ति जब समाज में रहता है तो उसे अपनी स्वतंत्रता के साथ–साथ दूसरे की स्वतंत्रता का, अपनी सुरक्षा के साथ–साथ दूसरे की सुरक्षा का, अपनी आवश्यकता के साथ–साथ दूसरे की आवश्यकता का तथा अपने सम्मान के साथ–साथ दूसरे के सम्माान का भी ध्यान रखना पड़ता है। इसी सामाजिक सन्दर्भ में मूल्यों का विकास होता है जो बताता है कि समाज में कैसा व्यवहार करना चाहिए और कैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।

प्राचीनकाल से ही दुनिया के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न प्रकार के समाजों का विकास हुआ। हर समाज की अपनी विशिष्ट मान्यताएँ और मूल्य (Values) होते हैं जिनका विकास उस समाज के लोगों द्वारा किया जाता है। हर समाज अपने मूल्यों के प्रति आस्थावान होता है और अपने सदस्यों को वह उन मूल्यों के अनुकूल आचरण करने को प्रेरित करता है। समाज अपने उन सदस्यों को किसी–न–किसी रूप में दण्डित करता है जो उन मूल्यों के विरूद्ध आचरण करते हैं। कोई भी समाज अपने निर्धारित मूल्यों के विरूद्ध आचरण करने वाले को सहज नहीं मानता। इसके विपरित कोई व्यक्ति समाज के स्वीकृत मूल्यों पर अटल रहकर अपना प्राण दे देता है तो उसकी प्रशंसा लोग खुलकर करने लगते हैं और मानते हैं कि उसका जीना–मरना दोनों ही श्रेयस्कर है।

मानवीय मूल्यों के निर्माण में सामाजिक मान्यताएँ, प्रथाएँ एवं आदर्श इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि उन्हे अक्सर शाश्वत मान लिया जाता है। **राधाकमल मुकर्जी** के अनुसार– "मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ एवं लक्ष्य हैं जिनका अन्तरीकरण सीखने या सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अधिमान, मान तथा अभिलाषाएँ बन जाती हैं।" सामाजिक मान्यताओं के प्रति यही दृढ़ आस्था व्यक्ति को इस तरह प्रभावित कर देती है कि वह भूल जाता है कि शादी–विवाह, पूजा–पाठ, रहन–सहन, यौन–व्यवहार आदि के नियम भी मनुष्य निर्मित है।

सामाजिक निर्धारकों का प्रभाव शिक्षा पर भी बहुत प्रमुखता से होता है। यदि मनुष्य सामाजिक नहीं होगा तो वह असामाजिक अथवा जंगली जीव हो जाएगा इस मान्यता को ध्यान में रखकर ही पूर्व प्राथमिक या प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चतर शिक्षा तक के पाठ्यक्रम में बालक के समाजीकरण को शैक्षिक गतिविधियों के केन्द्र में रखा जाता है। बालक के सामाजिक विकास अथवा समाजीकरण (Socialization) को लगभग सभी शिक्षाशास्त्री शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य मानते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में स्वीकार किया जाता है। परिवार समाज की इकाई होती है जहाँ से समाजीकरण की प्रक्रिया का आरंभ होता है और यह फिर जीवन पर्यन्त चलता रहता है। परिवार के बाद विद्यालय ही वह समुचित स्थान होता है, जहाँ बालक समाजीकरण की प्रक्रिया में शामिल होकर व्यवहार के नए–नए तरीके सीखता है। समाजीकरण हेतु सीखने–सिखाने की इस प्रक्रिया में सहयोग और प्रतियोगिता (Cooperation and competition) दोनों को समान रूप से शामिल किया जाता है। सहयोग की सीख समूह में काम करने, औरों से तालमेल बिठाने और किसी कार्य में उत्तम परिणाम लाने हेतु किया जाता है। वहीं प्रतियोगिता की भावना का प्रदर्शन उसकी श्रेष्ठा में निखार लाने का कार्य करता है। समाजीकरण के इस कौशल का विकास कभी खेल या अन्य आयोजन में प्रत्यक्ष विधि द्वारा किया जाता है तो दूसरी ओर ऐतिहासिक घटनाओं एवं साहित्यिक कहानियों के माध्यम से भी सामाजिक कौशल (Social skill) का ज्ञान दिया जाता है। **दुर्खीम (Durkheim)** के अनुसार– "शिक्षा मूलतः अपने स्वरूप, उद्‌भव एवं प्रकार्य की दृष्टि से एक सामाजिक क्रिया है।" इस सामाजिक क्रिया के दौरान बालक उन जीवन–मूल्यों को स्वतः विकसित करने लगता है जिसके आधार पर उसे समाज में अपनी श्रेष्ठता साबित करना है।

मनोवैज्ञानिक निर्धारक (Psychological Determinants)

मनुष्य शारीरिक रूप से विकसित, समूह में रहनेवाला सामाजिक प्राणी है। किन्तु मानव की सबसे बड़ी विशेषता उसकी जटिल मानसिक क्रिया की योग्यता है। यह योग्यता उसके विकसित मस्तिष्क (Brain) एवं तांत्रिक तन्त्र (Nervous System) के कारण प्राप्त होती है। मानव मन के इस स्वरूप को समझना, उसकी

अनुभूतियों एवं क्रियाओं की व्याख्या करना तथा व्यवहार के सम्बन्ध में अध्ययन करना मनोविज्ञान के अन्तर्गत आता है। मनुष्य का व्यवहार उसकी दैहिक आवश्यकता या सामाजिक प्रभुत्व तक ही सीमित नहीं होता; बल्कि उसकी मानसिक–अनुभूतियों एवं बौद्धिक क्षमता से सर्वाधिक प्रभावित होता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक के मन (Mind) अथवा मानसिक क्रियाओं के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करते हुए इसके तीन पक्षों की व्याख्या की है– संज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive aspect), भावनात्मक पक्ष (Affective aspect) और क्रियात्मक पक्ष (Conative aspect).

मन के संज्ञानात्मक पक्ष के अन्तर्गत संवदेना (Sensation), प्रत्यक्षीकरण (Perception), स्मृति मानी जाती है जिनकी सहायता से व्यक्ति अपने वातावरण या परिवेश की जानकारी प्राप्त कर उनके साथ अपना समायोजन (Adjustment) स्थापित कर पाता है। भावनात्मक पक्ष के कारण व्यक्ति में किसी के प्रति प्रियता या अप्रियता का भाव (Feeling) प्रकट होता है और इसकी तीव्रता से व्यक्ति क्रोध, भय, घृणा, प्रेम और सहानुभूति जैसी मानसिक स्थितियों का अनुभव करने लगता है। इन्हे संवेग (Emotion) कहा जाता है। कोई व्यक्ति जब अपने परिवेश का संज्ञान प्राप्त कर लेता है और उनके साथ उपयुक्त भावनात्मक संबंध स्थापित कर लेता है तो इसके फलस्परूप उत्पन्न हुई सक्रियता उसके क्रियात्मक पक्ष को दर्शाती है। व्यक्ति के समस्त अधिगम (Learning), समायोजन (Adjustment) तथा समस्या–समाधान (Problem Sovling) की क्षमता उसके क्रियात्मक पक्ष के अन्तर्गत आता है। किसी भी व्यक्ति का विभिन्न मनोवैज्ञानिक पक्ष उसके जीवन में मूल्यों के निर्धारक के रूप में काम करता है।

कोई भी व्यक्ति अपने वातावरण में उपस्थित भौतिक पदार्थो का संज्ञान प्राप्त करता है तो उसके प्रति अपनी पसंद या नापसंद का निर्माण करता है। इसी प्रकार अपने परिवेश के अन्य जीव या अन्य व्यक्तियों के व्यवहार का संज्ञान लेकर वह उसके प्रति प्रियता या अप्रियता का भाव विकसित करता है। भाव की यही तीव्रता उसके अन्दर किसी के प्रति अत्यधिक प्रेम या आकर्षण का भाव तो किसी के प्रति अत्यन्त घृणा या विकर्षण का भाव प्रकट करता है जो कि उसके व्यवहार में भी परिलक्षित होता है। इस प्रकार ये मनोवैज्ञानिक पक्ष व्यक्ति के जीवन में मूल्यों के निर्धारक बन जाते हैं। मनुष्य अपने तर्क एवं चिन्तन से सही–गलत का विचार करता है और परिवेश से प्राप्त ज्ञान को अपने अनुभवों के साथ मिलाकर जीवन–मूल्यों को स्थापित कर लेता है।

शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया का निर्धारण आधुनिक युग में इन मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आलोक में किया जाता है। शिक्षा सीखने–सिखाने की प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया के केन्द्र में अधिगम–क्षमता है जो कि मनोविज्ञान की विषयवस्तु है। यही कारण है कि मनोविज्ञान और शिक्षा के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। शिक्षा जहाँ पहले शिक्षक केन्द्रित या पाठ्यक्रम केन्द्रित हुआ करती थी, वहीं आधुनिक युग में सर्वत्र बाल–केन्द्रित शिक्षा का ही बोलबाला है। इसका श्रेय शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के प्रयोग को जाता है। मनोविज्ञान ने शिक्षण–विधि में तो आमूलचूल परिवर्तन ला दिया है। बालक की शिक्षा में अब उसकी रुचि, बुद्धि, आवश्यकताओं, कौशलों तथाउसकी सीमाओं को ध्यान में रखा जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान के नियमों को ध्यान में रखकर तैयार किए गए पाठ्यक्रम एवं शिक्षण–विधियों का प्रभाव भी मूल्यों के निर्माण पर पड़ता है। इस प्रकार मनोविज्ञान भी जीवन मूल्यों के निर्धारक के रूप में अपनी प्रमुख भूमिका निभाता है।

पारिस्थितिक निर्धारक (Ecologcial Determinants)

पारिस्थितिकी (Ecology) जीवविज्ञान की एक शाखा है जिसमें जीवों एवं पर्यावरण के बीच अन्तःक्रिया (Interaction) का अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत अजैविक घटक जैसे– जल, वायु, मिट्टी तथा भौतिक पर्यावरण या जलवायु आदि भी आते हैं और जैविक घटक जैसे– पेड़–पौधे, जीवाणु (Bacteria), या जन्तु (Animals) आदि भी आते हैं। किसी भी जीवों का अस्तित्व उसके भौतिक पर्यावरण और अन्य जीवों के साथ उसकी अन्तःक्रिया पर निर्भर होता है। इन सभी जैविक–अजैविक कारकों एवं उनके बीच अन्तःक्रिया का अध्ययन का भी बड़ा महत्व है। किसी भी देश या समाज की जैव–विविधता (Biodiversity), जनसंख्या का वितरण, जीविकापार्जन के साधन, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण एवं ऊर्जा खपत (Energy use) का प्रभाव जीवन–मूल्यों को प्रभावित करने का काम करता है।

प्राचीन काल में जब सम्पूर्ण धरती पर मानव–जनसंख्या बहुत कम थी, वैज्ञानिक तकनीक एवं उद्योगों का विकास नहीं हुआ था, तब मानव प्रकृति के साथ कोई खास हस्तक्षेप नहीं कर पाता था। प्राचीन मानव का जीवनयापन या जीविकोपार्जन की गतिविधि ऐसी नहीं थी जो पर्यावरण को क्षति पहुँचाए खेतीबाड़ी के विकास या लौह उपकरण का उपयोग प्रारंभ होने के बावजूद लोगों ने बेतहाशा जंगलों की कटाई नहीं की। भोजन के लिए जानवर मारे जाते थे, मनोरंजन के तौर पर भी पशुओं के आखेट (शिकार) की बात प्राचीनकाल में होती थी, परन्तु पशुओं की हत्या इस पैमाने पर नहीं होती थी कि किसी प्रजाति के अस्तित्व पर ही खतरा मँडराने लगे। परन्तु विगत सौ–डेढ़ सौ वर्षों में जनसंख्या विस्फोटक स्थिति में पहुँच गयी है। स्वास्थ्य सुविधाओं के अभूतपूर्व विकास एवं कृषि तकनीक की उन्नति से फसल उत्पादन में हुई क्रांतिकारी वृद्धि ने बाल मृत्यु दर (Child death ratio) या भूखमरी को तो बहुत हद तक नियंत्रित कर दिया, परंतु जम्न–दर गति में नहीं घटा। परिणाम यह हुआ कि दुनिया के अधिकांश भागों में प्राकृतिक संसाधनों को भारी जनसंख्या ने निगलना आरंभ कर दिया। शहरीकरण और औद्योगिकीरण के परिणामस्वरूप उपभोक्ता एवं उसपर अधिकार के लिए पूरी दुनिया में मारा–मारी की स्थिति उत्पन्न कर दी। इतना ही नहीं जीवन के लिए अति आवश्यक सामग्री जैसे– वायु, जल आदि के प्रदूषण को चिन्ताजनक स्तर पर पहुँचा दिया। ध्वनि प्रदूषण से कान एवं मस्तिष्क की अनेक बिमारियाँ सामने आ रही हैं। अब तो प्रदूषण फल, सब्जी, अनाज यहाँ तक कि माँ के दूध एवं गाय, भैंस के दूध तक पहुँ चुका है। कृत्रिमता एवं प्रदूषण का यह स्तर तमाम मानव मूल्यों को भी प्रभावित कर रहा है।

जनसंख्या के भारी दबाव से ऊपजी समस्याओं का ही परिणाम है कि "अतिथि देवो भवः" की संस्कृति में विश्वास रखने वाला अपना देश अपने ही देशवासियों से आये दिन प्रान्त और भाषा के नाम पर लड़ बैठता है। एक समय था जब दुनिया भर के लोग भारत की शिक्षा या समृद्धि से आकर्षित होकर यहाँ बसने चले आते थे और बस भी जाते थे। परन्तु आज बंग्लादेशी शरणर्थियों या रोहिंग्या मुसलमानों को देश बर्दाशत करने को कतई तैयार नहीं है। नदियों के जल–बँटवारे को लेकर अक्सर दो प्रदेशों के बीच लड़ाई ठन जाती है जिससे जान–माल का नुकसान बड़े पैमाने पर होता है। गरीबी की चुनौती का समाना करने एवं बड़ी संख्या में रोजगार सृजन हेतु औद्योगिकरणी आवश्यक है, परंतु इसके कारण होने वाले प्रकृति को विनाश से बचाना भी उतना ही आवश्यक है। यही कारण है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पर्यावरण एवं भविष्य की चुनौतियों को लेकर विश्व भर के वैज्ञानिक अर्थशास्त्री पर्यावरणविद् एवं राजनीतिज्ञ चिन्तित हुए एवं संपोषित विकास (Sustainable Development) की आवश्यकता पर जोर देने लगे। इस संपोषित विकास के तीन आयाम हैं– पर्यावरण, अर्थशास्त्र एवं समुदाय। भारत सहित दुनिया के अनेक देशों में पर्यावरण को बचाने हेतु सरकारी स्तर पर एवं सामुदायिक स्तर पर अनेक प्रयास आरंभ किए गए। "जल, जंगल एवं जमीन" को बचाने के लिए अनेक आन्दोलन चलाए गए। जैव विविधता के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय अभयारण्यों, राष्ट्रीय उद्यानों एवं चिड़ियाघर के विकास को प्राथमिकता दी गयी। सन् 1972 में भारतीय वन्य जीव संरक्षण अधिनियम लाया गया। "प्रोजेक्ट टाइगर" की शुरूआत 1973 में की गयी ताकि बाघ के प्रजाति को खत्क होने से बचाया जा सके। इसी प्रकार गंगा नदी की शुद्धता एवं प्रवाह कायम रहे, इसके लिए 1986 में "गंगा एक्शन प्लान" ("Ganga Action Plan") बना।

आँकड़े बताते हैं कि बढ़ी हुई जनसंख्या से भी ज्यादा पर्यावरण को क्षति पहुँचाने का काम विलासितापूर्ण जीवन के लालच ने किया। यही कारण है कि कार्बन उत्सर्जन की मात्रा को देखें तो यह विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में कई गुणा अधिक पाया जाता है। इस स्थिति को महात्मा गाँधी ने बहुत पहले समझ लिया था और कहा था कि "पृथ्वी सभी मनुष्यों की जरूरत पूरी करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है, लेकिन लालच पूरा करने के लिए नहीं"। ("The world has been enough for everyone's need, but not enough for everyone's greed)".

आज की शिक्षा में उन मूल्यों को समाहित किए जाने की आवयश्कता है जो तीव्र जनसंख्या वृद्धि, अर्थव्यवस्था के बदलते स्वरूप, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण एवं भूमण्डलीकरण से उत्पन्न चुनौतियों को समझ सके। आज उन मूल्यों के विकास की आवश्यकता है जो पर्यावरण–प्रदूषण पर नियंत्रण एवं हरित क्षेत्र के विकास

के साथ–साथ जैव–विविधता (Biodiversity) के संरक्षण को एक बोझ के रूप में नहीं बल्कि इसे एक अवसर के रूप में लें। यह मानवचित जिम्मेवारी है कि आनेवाली पीढ़ियों के लिए भी धरती को मानव–विकास का श्रेष्ठ स्थान बने रहते दें। यह तभी हो सकता है जब सभी प्रकार के वनस्पति एवं जन्तु (Flora and Fauna) का महत्व समझें एवं उनके संरक्षण को बढ़ावा दें। विभिन्न प्रकार के प्रदूषण से होनेवाले हानिकारक प्रभावों को समझें एवं इस प्रकार की जीवन–पद्धति को अपनाएँ जो कम–से–कम प्रदूषण पैदा करे। सौर ऊर्जा एवं वैकल्पिक ऊर्जा के प्रयोग को बढ़ावा दें। अब तो पर्व–त्यौहार एवं शादी–विवाह के मौके पर परम्परागम पटाखे की जगह "ग्रीन–क्रैकर्स" जलाने की बात की जा रही है जो कि निर्माणधीन है और प्रदूषण पैदा नहीं करता। प्लास्टिक कचरे से होनेवाले हानिकारक प्रभाव एवं बीमारियों के प्रकोप से बचने के लिए स्वाभाविक रूप से सड़नशील (Biodegradable) पदार्थों का ही प्रयोग करें।

आज यह स्पष्ट हो चुका है कि विज्ञान और संस्कृति दोनो पारिस्थितिकी को विनाश की ओर ले जा रहे हैं। वैज्ञानिक विकास के फलवस्वरूप हुए उद्योगों एवं यातायात के साधनों के विकास न जहाँ एक ओर प्रदूषण को अत्यधिक बढ़ावा दिया है, वहीं आधुनिक उपकरणों की सहायता से तेजी से जंगलों को काटकर धरती की हरियाली को नष्ट किया जा रहा है। वैज्ञानिक विकास एवं तकनीकी का उपयोग यदि गरीबों को रोजगार एवं जीवनयापन के बेहतर अवसर देकर उनके जीवन–स्तर को उठाने में किया जाए तो यह अच्छी पहल होगी, परंतु पर्यावरण की कीमत पर या जैव–विविधता को नष्ट कर ऐसा करना विनाशकारी साबित होगा। इसी प्रकार प्राचीनकाल में नदियों के किनारे ही मानव सभ्यता एवं संस्कृति का विकास आरंभ हुआ। नदियों की इस पवित्रता एवं जीवंतता पर लोगों को इतना विश्वास था कि मरने के बाद व अपने पूर्वजों की मुक्ति और उनकी आत्मा की शांति हेतु उन्हें नदी किनारे जलाने और अस्थि विसर्जन करने लगे। उस समय जनसंख्या कम थी, शहर या उद्योगों का इस प्रकार विकास नहीं हुआ था कि जीवनदायी नदियाँ प्रदूषित हो जाएँ। परन्तु आज इस तरह क परम्परा नदियों के प्राणघातक साबित हो रही है। इसी प्रकार नदी–तालाबों में प्रतिमा–विसर्जन एक शुभ संस्कार माना जाता था, परंतु आज ऐसा करने से नदियों एवं तालाबों का दम घुटने लगा है। अतः मूल्यों में उन परिवर्तनों की आवश्यकता है जो जल को जीवन का स्रोत बने रहने दे, उसे प्रदूषण–मुक्त रहने दे। इसी प्रकार हरित क्षेत्र का विकास, पेड़–पौधे की पूज एवं प्रणी मात्र के प्रति दया के भाव को आधुनिक शिक्षा पुनः मानव–मूल्य के रूप में स्थापित करे इसकी आवश्यकता है।

3.6 भारतीय संस्कृति और मूल्य (Indian Culture and Values)

पिछली इकाई में आपने भारतीय संस्कृति में निहित मूल्यों को विस्तार से पढ़ा। इस उप–इकाई में भारतीय संस्कृति में मूल्यों की चर्चा संक्षेप में की जा रही है। भारत की संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसमें प्रारंभ से ही जीवन मूल्यों को प्रधानता दी गयी। भारत के लम्बे इतिहास एवं विस्तृत भूगोल में रीति–रिवाजों, परम्पराओं, भाषाओं एवं धर्मो का विकास हुआ। सनातन धर्म या हिन्दू धर्म ने अध्यात्मिक विकास एवं जीवन मूल्यों को ही मानव जीवन में प्रधानता दी। आज से हजारों वर्ष पूर्व **मुण्डकोपनिषद्** ने सत्य के विजय की घोषणा की– "सत्यमेव जयते" जो आज भी भारत के राष्ट्रीय प्रतीक का एक हिस्सा है। **महा उपनिषद्** में ही "वसुधैव कुटुम्बकम्" का उद्घोष किया गया जिसका अर्थ है– दुनिया एक परिवार है। **पुराण और उपनिषद्** में इसी भाव से भरकर सबके सुख और कल्याण की प्रार्थना की गयी है:–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग भवेत्।।"

अर्थात् सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगल के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े। इस प्रकार जीव मात्र से प्रेम, उनके प्रति दया एवं सहानुभूति की शिक्षा भारतीय संस्कृति का मूल है। बौद्ध धर्म में भी जातक कथाओं के माध्यम से उच्च नैतिकता पर कायम रहने की शिक्षा दी गयी है। जैन धर्म ने भी "अहिंसा परमो धर्मः" के सिद्धांत को सर्वोपरि माना एवं किसी भी छोटे–छोटे जीव के प्रति हिंसा को महापाप माना। सोलहवीं सदी में जन्में महाकवि **गोस्वामी तुलसीदास** ने भी जो धर्म और अधर्म की परिभाषा

दी वह भी परोपकार को सबसे बड़ा धर्म और किसी को भी पीड़ा पहुँचाने को सबसे बड़ी नीचता बताता है– "परहित सरिस धर्म नहीं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई।" आधुनिक युग में भी जब देश विदेशी दासता के चंगुल में फँसा कराह रहा था, तब महात्मा गाँधी ने अंग्रेजों को देश से भगाने के लिए सत्य और अहिंसा के हथियार का ही प्रयोग किया। भारतीय बहुसंख्य जनता भी सत्याग्रह के रास्ते को अपनाीय और देश आजाद हुआ। सनातन धर्म पूजा पद्धति पर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि इसमें विभिन्न पशुओं को भी वाहन या किसी अन्य रूप में देवी–देवताओं से जोड़कर उन्हें पूजन योग्य बना दिया है। भारतीय संस्कृति में तो वृक्षों की पूजा भी विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रूपों में की जाती है। हमारी संस्कृति में ऐसे पर्व, व्रत या त्योहार विशिष्ट तिथियों में आते हैं जिनमें किसी विशेष पौधे जैसे– पीपल, नीम, आँवला, बरगत, बेल, आम, केला, वटवृक्ष आदि की पूजी की जाती है। इस प्रकार जीव–मात्र से प्रेम भारतीय संस्कृति है और उच्च स्तरीय जीवन मूल्य के दर्शन यहाँ की संस्कृति में सर्वत्र दिखता है।

3.7 सारांश (Summary)

व्यवहार विज्ञान के अन्तर्गत मानव व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से समाजशास्त्र, मनोविज्ञान एवं मानवशास्त्र आता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसके पास एक विकसित एवं जटिल मस्तिष्क होता है। इस कारण से इसके व्यवहार में भी व्यापकता एवं जटिलता का समावेश होात है। मानव मूल्यों का सम्बन्ध समाज में स्वीकृत उच्च कोटि के मानदण्डों से है जिसे नैतिकता कहते हैं। क्षमा, दया, प्रेम, आदर, शिष्टाचार, सहयोग, सहानुभूति, सत्य और न्याय के प्रति झुकाव वैसे गुण या आदर्श हैं जिन्हें मानव–मूल्यों की श्रेणी में रखा जाता है। मानव–मूल्यों की प्रकृति की बात करें तो इसका स्वरूप अमूर्त होता है। विभिन्न समाजों के अलग–अलग मूल्य होते हैं। ये मूल्य सामाजिक एकता स्थापित मानक के रूप में कार्य करता है। विभिन्न मूल्यों की महत्ता अलग–अलग होती है और इनके बीच परस्पर विरोधाभास भी देखने को मिलता है। मूल्य सामाजिक नियन्त्रण का एक साधन होता है और इसमें कल्याण की भावना होती है। मूल्यों का टकराव हमेशा हानिकारक नहीं होता; बल्कि इनके टकराव से कई बार कुप्रथाओं का अंत होता है एवं नयी स्वस्थ परम्पराओं का विकास भी होता है। जीवन मूल्यों के विकास के विभिन्न स्रोत हैं– परिवार, परिवेश, संस्कृति, विद्यालय, रिश्ते–नातेदारी, समाचार–माध्यम, संगठन, साहित्य, राजनीतिक व्यवस्था, इतिहास, धर्म, व्यक्तिगत अनुभव एवं व्यावसायिक स्थिति। 'मूल्यों' के जैविक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं पाररिस्थितिक निर्धारक होते हैं। मानव–मूल्यों के इन सभी निर्धारकों का प्रभाव बालक की शिक्षा पर पड़ता है। शिक्षा में उन तथ्यों को समाहित किया जाने की आवश्यकता है जो मानव–मूल्यों की रक्षा करते हुए वर्तमान एवं भविष्य की चुनौतियों का सामना कर सके। भारतीय संस्कृति में उन मूल्यों का समावेश प्राचीनकाल से ही मिलता है जो जीव मात्र से प्रेम की सीख के साथ–साथ पर्यावरण की रक्षा का संदेश भी देते हैं।

3.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. व्यवहार विज्ञान में मूल्यों की अवधारणा स्पष्ट करें।
   Explain the concept of values in behavioural science.
2. मानव मूल्यों की प्रकृति का वर्णन करें।
   Discuss the nature of human values.
3. मूल्यों के विभिन्न स्रोत कौन–कौन से हैं? व्याख्या करें।
   What are the different sources of values? Explain.
4. मूल्यों के जैविक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और पारिस्थितिक निर्धारकों का वर्णन करें। साथ ही शिक्षा पर उनके प्रभाव की व्याख्या करें।
   Discuss the biolgical, social, psychological and ecological determinants of values. Also Explain their bearing on education.

5. भारतीय संस्कृति और मानव–मूल्य किस प्रकार एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं?
How is Indian culture and human values corelated?

3.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Tripathi, A.N. (2009): Human Values, New Age International (P.) Ltd. Lucknow.
2. Chakarborty, S.K. & Chakraborty, Debangshu (2014) : Human Values and Ethics, Himalaya Publishing House, Delhi.
3. सिंह, जे० पी० (2017) : समाजशास्त्र : अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, PHI Learning Private Ltd., Delhi.

इकाई-4

पारिवारिक मान्यताएँ
(Family Values)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

4.0 उद्देश्य (Objective)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 पारिवारिक मान्यताएँ (Family Values)

4.3 परिवार के घटक, संरचना एवं उत्तरदायित्व
(Components, Structure and Responsibilities of Family)

4.4 नाराजगी का निराकरण-समायोजन (Neutralization of Anger- Adjustability)

4.5 पारिवारिक जीवन के खतरे - परिवार और समाज में महिलाओं की स्थिति
(Threats of family life - Status of women in family and society)

4.6 जरूरतमंद और बुजुर्गों की देखभाल - विचार और सरोकार साझा करने हेतु समय निर्धारित करना
(Caring for needy and elderly - time allotment for sharing ideas and concerns)

4.7 सारांश (Summary)

4.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

4.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

4.0: उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण:

- परिवार की मान्यताओं के बारे में जान सकेंगे।
- परिवार के घटक, उसकी संरचना एवं उत्तरदायित्व को समझ सकेंगे।
- परिवार में समायोजन स्थापित कर असंतोष का निराकरण करने के संबंध में जान सकेंगे।
- परिवार और समाज में महिलाओं की स्थिति को समझ सकेंगे।
- जरूरत मंद और बुजुर्गो की देखभाल एवं उनके साथ समय साझा करने की आवश्यकताएँ समझ सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

4.1: प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परिवार को समाज की आधारभूत इकाई माना जाता है। परिवार के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। एक व्यक्ति के जीवन में प्रारंभ से लेकर अन्त तक की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का पहला और सर्वप्रमुख साधन परिवार होता है। परिवार एक संस्था है जो अपने सभी सदस्यों की हित-रक्षा एवं आवश्यकता की पूर्ति का काम करती है। इसकी कुछ मान्यताएँ अथवा रीति-नीति होती है जिससे कि परिवार के सदस्य नियन्त्रित होते हैं और अपने-अपने दायित्वों को पूरा करते हैं। परिवार का स्वरूप एवं इसके सदस्यों का व्यवहार भी बदलते समय एवं परिस्थितियों के साथ बदलता रहता है। आज की बदली हुई

परिस्थितियों में न सिर्फ पारिवारिक मूल्यों का क्षरण हुआ है, बल्कि परिवार जैसी महत्वपूर्ण संस्था ही विघटन की स्थिति में है। आज परिवार के सदस्यों की अपेक्षा पर खरा उतरना, उनके असंतोष का निराकरण करना तथा सबके आवश्यकता की पूर्ति करना बड़ी कठिन चुनौती हो गई है। परिवार और समाज में महिलाओं की स्थिति दयनीय होगी तो स्वस्थ समाज का निर्माण कदापि नहीं हो सकता है। इसलिए महिलाओं के सशक्तिकरण का आरंभ परिवार से होना चाहिए। आज जो बच्चे या युवा हैं, वही कल बुजुर्ग भी होंगे। इस बात को आत्मसात् कर बुजुर्गो के देखभाल की उचित व्यवस्था भी परिवार में होनी चाहिए। अत: इस इकाई में इन्ही बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

4.2: पारिवारिक मान्यताएँ (Family Values)

एक घर में साथ-साथ रहने वाले, एक साथ भोजन करने वाले, यौन व्यवहार एवं प्रजनन प्रक्रिया को नियन्त्रित करने वाले तथा एक-दूसरे के सुख-दुख में साझीदार व्यक्तियों के समूह को परिवार कहा जाता है। **जार्ज मुरडॉक (George Murdock)** ने परिवार का चित्रण एक ऐसे सामाजिक समूह के रूप में किया है जो एक ही आवास में रहते हों, आर्थिक सहयोग और प्रजनन करते हों। इसमें वयस्क स्त्री-पुरुष सम्मिलित हों, जिनमें कम-से-कम दो के बीच सामाजिक रूप से स्वीकृत यौन-संबंध हों और एक या अधिक बच्चे हों, लैंगिक रूप से साथ रहने वाले वयस्क उसे अपनाते या स्वीकारते हों। ("A social group characterized by common residence] economic co-operation and reproduction. It includes adults of both sexes, at least two of whom maintain a socially approved sexual relationship and one or more children, own or adopted of the sexually co-habiting adult.") इसी तथ्य को **कांकलिन (Conklin)** ने बड़े सरल ढ़ंग से कहा ''परिवार कम-से-कम दो व्यक्तियों के बीच सामाजिक रूप से परिभाषित संबंध है, जो जन्म, विवाह या दत्तक-ग्रहण की प्रक्रिया से जुड़ा होता है।'' (A family is a socially defined set of relationships between at least two people who are related by birth, marriage or adoption.")

एक बालक का जन्म माँ के गर्भ से होता है और उस परिवार का हिस्सा बन जाता है जिसमें उसके माँ-बाप होते हैं। बालक के सम्पूर्ण विकास में सबसे बड़ी भूमिका उसके परिवार या माता-पिता की होती है। मनुष्य सिर्फ एक जैविक प्राणी ही नहीं है, बल्कि वह सामाजिक और संवेदनशील प्राणी के रूप में जाना जाता है। एक बालक का जितना शारीरिक विकास अपेक्षित होता है, उतना ही उसका मानसिक, बौद्धिक, भावात्मक और नैतिक विकास भी आवश्यक होता है। यद्यपि बालक ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है, परंतु जन्म के समय वह हर तरह से कमजोर और लाचार होता है। वह अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं के लिए अपने परिवार या माँ-बाप पर निर्भर होता है; परंतु उसमें विकास की अनंत संभावनाएँ मौजूद होती हैं जिसका प्रकटीकरण धीरे-धीरे परिवार में होता है। इस प्रकार एक बालक के जन्म के बाद उसके जीवन की शुरूआत परिवार में होती है और जैसा पारिवारिक वातावरण उसे मिलता है, उसी के अनुकूल उसका विकास होता चला जाता है।

बालक ईश्वर की सर्वोत्तम रचना है। परिवार बच्चों की प्रथम पाठशाला होती है और माँ उसकी सर्वप्रथम शिक्षिका होती है। अगर माता-पिता अपने बालक से प्रेम करते हैं, उसके साथ विचारों का आदान-प्रदान करते हैं और उसकी इच्छाओं का सम्मान करते हैं तो बालक का उत्तम नैतिक-वैचारिक विकास होता है। बालक यदि अपने परिवार में सदस्यों के बीच सहयोग का व्यवहार देखता है तो उसमें भी सहयोग और उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। यदि बालक अपने माता-पिता को ईमानदारी की नीति पर चलते देखता है तो वह भी ईमानदार बनता है । यदि वह परिवार के सदस्यों के बीच सद्भाव देखता है तो उसमें भी सद्भाव और सदाचार का गुण विकसित होता है। इसके विपरीत जब एक बालक माँ-बाप को बात-बात में झूठ बोलते देखता है तो वह भी झूठ बोलना सीख जाता है। जब वह अपने परिवार के सदस्यों के बीच छल-प्रपंच का वातावरण देखता है तो उसका भी मन घृणा से भर जाता है। पारिवारिक कलह के परिणामस्वरूप बालक में उग्रता एवं हिंसा के भाव का उदय होता है। परिवार में वैमनस्य और भय का वातावरण बालक को उद्दंड और असामाजिक बना देता है। इस प्रकार एक बालक के नैतिक विकास में उसकी परिवारिक मान्यताओं की बड़ी भूमिका होती है।

बालक के मानसिक, बौद्धिक एवं नैतिक विकास में उसके विद्यालय, सामाजिक परिवेश, शिक्षकों का व्यवहार, साहित्य एवं चलचित्र आदि की भी प्रमुख भूमिका होती है, परंतु सबसे ज्यादा प्रभाव उसकी पारिवारिक मान्यताओं का होता है। बालक के व्यक्तित्व पर पहली छाप उसके माता-पिता की ही पड़ती है। परिवार ही एक बालक को सफल सामाजिक जीवन के लिए तैयार करता है। बालक उन विचारों एवं सिद्धांतों को अपनाता चला जाता है जिसका सम्मान वह अपने परिवार में होते देखता है। **'बर्ने'** कहते हैं कि इसे दुर्भाग्य कहें या सौभाग्य मनुष्य के जीवन में बचपन का वह काल अपरिहार्य है, जब उसका दिमाग, ज्ञान, विचार सब कुछ उसके माता-पिता द्वारा किए गए संस्कारों में ढ़ल जाता है। जाने-अंजाने बालक अपनी पारिवारिक मान्यताओं को बड़ी सहजता से ग्रहण कर लेता है जिसका असर उसके सम्पूर्ण जीवन में देखा जा सकता है।

हम किसी भी महापुरुष की जीवनी पढ़ें तो पाते हैं कि जिन महान गुणों के लिए वे विख्यात हुए, उन गुणों का बीजारोपण बहुत ही कम उम्र में उनके परिवार के किसी सदस्य द्वारा अथवा आस-पास के परिवेश में हुआ। बच्चे का पालन जब परिवार के सदस्यों के बीच होता है, तब बालक आपसी सामंजस्य के साथ जीवन जीना सीखता है। पहले जो दादा-दादी या नानी की कहानियाँ हुआ करती थी, बालक में उच्च नैतिक गुणों के बीजारोपण में उनकी बड़ी भूमिका होती थी। आज के अर्थ-युग में संयुक्त परिवार का चलन पूरी तरह समाप्त हो चुका है। एकल परिवार में भी माँ-बाप दोनों नौकरी या व्यवसाय में लगे हैं ताकि अधिक-से-अधिक अर्थोपार्जन कर सम्पन्नता का जीवनयापन कर सकें। आर्थिक विकास के इस होड़ में बच्चों के लिए थोड़ा भी समय निकाल पाना अब माता-पिता के लिए मुश्किल हो गया है। वे समझते हैं कि पैसे से सबकुछ खरीदा जा सकता है, पैसे के बिना या पैसे की कमी में तो जीवन चलाना और बच्चों की जरूरतों को पूरा करना असंभव हो जाएगा। ऐसे में पति-पत्नी दोनों जब काम पर चले जाते हैं तो चाहकर भी वे बच्चों का ध्यान नहीं रख पाते । नौकरों या आया दीदी की कृपा पर 'क्रेच' में पल रहे बच्चे अनेक प्रकार की उपेक्षा या कमी का शिकार हो जाते हैं जिसमें उनका नैतिक और संवेगात्मक विकास नहीं हो पाता है।

बच्चों की हर माँग मानना, आधुनिक सुविधाएँ मुहैया कराना और बड़े बैंक बैलेंस तैयार करना - यह आदर्श परवरिश नहीं है। आज के अभिभावकों को समय की कमी तो है ही, उससे भी अधिक समझ की कमी है। जब वे बच्चे को स्वंय समय नहीं देंगे तो बच्चे अपना ज्यादातर समय टेलीविजन या मोबाइल पर व्यतीत करेंगे, क्योंकि आधुनिक शहरी जीवन में तो अब आउटडोर गेम्स या अन्य बच्चों के साथ खेलने की सुविधा है ही नहीं। अब तो एक बच्चे का चलन भी खूब बढ़ा है, इसलिए भाई या बहन के साथ भी बच्चा खेल नहीं सकता। दादा-दादी, नाना-नानी जैसे रिश्ते को बच्चा अब जानता ही नहीं। अकेले बच्चा का परवरिश अब परिवार के खुशनुमा माहौल में नहीं हो पाता। अपना-अपना काम पकड़ने की जल्दबाजी में माता-पिता का एक दूसरे पर झल्लाहट, झगड़ा और अहम का टकराव देखकर बच्चा परेशान रहता है। ये माता-पिता अपनी मजबूरी बताते हैं कि जब ये स्वंय को समय नहीं दे पाते तो बच्चे को समय क्या देंगे। बच्चे माता-पिता से ज्यादा मोबाइल, इंटरनेट, वाट्सअप, फेसबुक, यु-ट्यूब को ही अपना साथी समझने लगे हैं और उसपर विश्वास करने लगे हैं इसके भयंकर परिणाम अब सामने आने लगे हैं। कुछ घटनाओं पर नजर डालें:

- ब्लू-व्हेल गेम ने अब तक ली कई बच्चों की जान।
- नौ साल की मोबाइल एडिक्ट बच्ची ने किया आत्महत्या का प्रयास; क्योंकि माता-पिता ने बच्ची के मोबाइल इस्तेमाल पर रोक लगा दी थी।
- दिल्ली में एक चार साल की बच्ची का यौन शोषण हुआ। इसका आरोप साथ में पढ़ने वाले एक बच्चे पर है।
- लखनऊ में कक्षा छठी की छात्रा ने पहली में पढ़ने वाले एक छात्र को चाकू से गोदकर घायल कर दिया सिर्फ एक दिन विद्यालय में छुटटी हो जाए इसलिए उसने ऐसा किया।
- गुरुग्राम के एक स्कूल में भी ऐसी ही एक घटना घटी जब नवीं के एक छात्र ने पहली में पढ़ने वाले एक छात्र को चाकू से गोदकर हत्या कर दी। उसने भी परीक्षा टलवाले के लिए ऐसी घटना को अंजाम दिया।

निराश और उद्वेलित कर देने वाली ऐसी घटनाओं का जिक्र करके हम नकारात्मकता को बढ़ावा नहीं देना चाहते; परंतु ऐसी घटनाओं पर अब आँखे मूँद कर रह जाना भी किसी खतरे की घंटी से कम नहीं है। कच्ची उम्र में तरह-तरह के अपराध एवं हिंसक घटनाएँ अब महानगरों तक या किसी खास तबके तक सिमट कर नहीं रह गई है; बल्कि इसकी चपेट में अब कहीं भी, कोई भी बच्चा आ सकता है। इसका गुनहगार भी कोई छोटा बच्चा नहीं, बल्कि हम सब हैं, समाज है, जो बच्चों को समय से पहले बड़ा होने पर मजबूर कर रहे हैं। हमने बच्चों को अपराधी बनाने वाला बहुत सारा सामान उनकी आसान पहुँच में ला दिया है। घरों में वाई-फाई, लैप-टॉप, कम्प्यूटर एवं सैकड़ों चैनलों से लैस टीवी हैं। बच्चों के हाथ में स्मार्ट फोन और टैबलेट भी आम हो गए हैं। बच्चे अब अपने माता-पिता से अधिक मोबाइल, इंटरनेट, वाट्सअप, फेसबुक, विडियो गेम्स, चैटिंग आदि के साथ अपना समय बिताते हैं और उसका जादू उनके सर चढ़कर बोलता रहता है। हरियाणा के 11वीं कक्षा के बालक ने स्वीकार किया कि उसने बार-बार टीवी पर 'क्राइम पेट्रॉल' कार्यक्रम देखकर अपने स्कूल के प्रिन्सिपल की हत्या की योजना बनायी और चाकू से गोदकर प्रिन्सिपल को मार डाला। कम उम्र के बच्चे पोर्न फिल्में देखकर यौन-अपराध को अंजाम देते हैं, यह बात भी अब बार-बार सामने आ रही है।

आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जिस तरह से बच्चों के मन-मस्तिष्क को प्रदूषित कर रहा है, वह भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व के समाजशास्त्रियों एवं चिन्तकों के लिए चिंता का विषय है। फिल्मों एवं टेलीविजन के पर्दे पर बढ़ती हिंसा, अपराध के नए-नए क्रूर तरीके, नफरत, द्वेष, भौड़ा अंग-प्रदर्शन तथा खुलेआम परोसे जा रहे सेक्स के असर से बच्चों को बचाना मुश्किल साबित हो रहा है। बदलते एवं सिमटते सामाजिक तानेबाने एवं बिखरते नैतिक मूल्यों के बीच आज परिवार जैसी संस्था ही नष्टप्राय हो चली है। जब परिवार ही समाप्त हो रहा है तो फिर पारिवारिक मान्यताओं की रक्षा कैसे होगी? हमारे बच्चे का वर्तमान और भविष्य कैसे सुरक्षित रहेगा? यह यक्ष-प्रश्न आज सभी जागरूक अभिभावकों को उद्वेलित कर रहा है।

बालक इस धरती पर ईश्वर की सर्वोत्तम कृति एवं मानवता की अनमोल निधि हैं। बच्चे ही किसी समाज या देश के भावी नागरिक हैं। वे ही अपने परिवार या माता-पिता की सबसे बड़ी उम्मीद हैं। बच्चों को बचाकर ही हम अपने वर्तमान और भविष्य दोनों को बचा सकते है। यदि बच्चों को बचाना है तो परिवार को बचाना होगा। यहाँ परिवार को बचाने से अर्थ पारिवारिक मान्यताओं एवं उसके वास्तविक स्वरूप को बचाने से है। परिवार सिर्फ जैविक एवं भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने का स्थान नहीं है बल्कि उन तमाम मानवीय गुणों को सृजित करने का स्थान है जिसमें बालक प्रेम, सौहार्द, सहयोग, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, सेवा, श्रम, समर्पण, त्याग और सम्मान का पाठ पढ़कर आदर्श जीवन की नीव रखता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रथम पाठशाला के रूप में परिवार बच्चों को सही प्रेरणा, उत्तम मार्गदर्शन एवं सटीक परामर्श का केन्द्र बने। पारिवारिक मान्यताओं को स्थापित करके ही स्वच्छ समाज एवं सबल राष्ट्र का निमार्ण किया जा सकता है। यह हर किसी को समझना होगा। इसके लिए सर्वप्रथम परिवार में प्रेम और अपनापन का वातावरण होना आवश्यक है। माता-पिता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे अपने बच्चे को विश्वास में लें कि उनके लिए बच्चों से बढ़कर, उनकी खुशी से बढ़कर कुछ भी नहीं है। बच्चों के लिए भी परिवार से बढ़कर सुरक्षित और हितकर जगह कोई नहीं है। प्रेम और विश्वास के वातावरण में ही उच्च मानवीय मूल्यों का सृजन एवं श्रेष्ठ पारिवारिक मान्यताओं का पोषण संभव है जो कि समय की माँग है।

4.3: परिवार के घटक, संरचना और उत्तरदायित्व (Components, Structure and Responsibilities of Family)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परिवार समाज की आधारभूत इकाई होती है। जहाँ से एक बालक जन्म लेकर भविष्य का नागरिक बनता है। परिवार ही वह संस्था है जहाँ व्यक्ति अपने पूर्वजों/बुर्जुगों की देखभाल करता है, कंधा से कंधा मिलाकर काम करता है और बच्चे को जन्म देकर, पालन-पोषण कर बड़ा बनाता है। अर्थात् अपने भूतकाल से संबंध जोड़कर, वर्तमान को सींचने तथा भविष्य को गढ़ने का काम परिवार में ही होता है। इसके कतिपय सिद्धांत एवं व्यवहार होते हैं जो परिवार के घटक के रूप में काम करते है। परिवार की विभिन्न संरचना

या बनावट होती है तथा परिवार के हर सदस्य का कुछ उत्तरदायित्व होता है। इन्हीं तथ्यों की चर्चा इस उप-इकाई में की जा रही है।

4.3.1: परिवार के घटक (Components of Family)

सतही तौर पर देखने से परिवार व्यक्तियों का समूह मालूम पड़ता है, परंतु परिवार वास्तव में व्यक्तियों का समूह नहीं होता, यह भावनाओं का एकीकरण होता है। प्रेम और अपनापन के एहसास के बिना परिवार का अस्तित्व नहीं हो सकता है। इसलिए परिवार का घटक व्यक्तियों को न कहकर उन भावनाओं, विचारों एवं व्यवहार को माना गया है जो कि परिवार को एक सूत्र में बाँधने का काम करता है। पारिवारिक संबंध विशेषज्ञ **माइकेल गॉटलिब (Michelle Gottlieb)** के अनुसार परिवार के चार घटक हैं- स्वस्थ संवाद, आदर, प्रेम और परिवार के सभी सदस्यों को पसंद करना। इसके अतिरिक्त भी ऐसे अनेक विचार एवं व्यवहार हैं जो परिवार को संगठित रखकर सुविकसित करने का काम करते हैं। इन्हीं घटकों की व्याख्या नीचे की जा रही है:

स्वस्थ संवाद: परिवार चूकि भावनाओं की संबंधता होती है, इसलिए इसमें स्वस्थ संवादों का आदान-प्रदान अत्यंत आवश्यक होता है। परिवार के सभी सदस्य खुलकर अपने विचारों का आदान-प्रदान करें, एक-दूसरे की बातों का बुरा नहीं माने, भय और पक्षपात से रहित होकर बिना दबाव के अपनी बातों से राजी करने का प्रयास करें - यह अत्यावश्यक है।

पारिवारिक लगाव: परिवार को परिवार बनानेवाला सबसे महत्वपूर्ण घटक आपसी प्रेम है। यदि परिवार के सदस्यों के बीच आपस में प्रेम न हो, एक दूसरे से लगाव न हो, एक-दूसरे के लिए फिक्र न हो, बात-बात में एक दूसरे का जिक्र न हो तो परिवार परिवार रह ही नहीं जाता।

आर्थिक प्रबंधन: परिवार में सदस्य एक दूसरे से जुड़कर इसलिए भी रहते हैं क्योंकि इससे सबों की जरूरत की पूर्ति होती है। इसमें भी आर्थिक आवश्यकता सबसे महत्वपूर्ण है जाहिर है कि परिवार में किसी सदस्य की व्यक्तिगत आय कम तो किसी की अधिक होगी। किसी बच्चे या बड़े का अर्थोपार्जन शून्य भी हो सकता है। परंतु परिवार भावना के तहत किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं होना चाहिए। किसी व्यक्ति की आय को उसकी व्यक्तिगत आय न मानकर पूरे परिवार की आय मानना चाहिए और खर्च का प्रबंधन भी ऐसा हो जिसमें किसी को यह महसूस नहीं हो कि उसकी उपेक्षा हो रही है। कुल मिलाकर आर्थिक प्रबंधन न्यायोचित होना चाहिए।

लचीलापन: परिवार के सदस्य भिन्न-भिन्न उम्र के होते हैं, उनमें पीढ़ियों का अंतर होता है। परिवार के सदस्यों में बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सभी शामिल होते है, अत: उनमें वैचारिक मतभेद होना या समझ में अन्तर होना स्वभाविक होता है। ऐसे में परिवार के मुखिया को एवं अन्य सदस्यों को भी अपने विचार एवं व्यवहार दोनों में लचीला रुख बनाए रखना चाहिए। बच्चे के प्रति व्यवहार में संतुलन बनाकर रखना और भी आवश्यक हो जाता है। बच्चे से अक्सर प्यार से पेश आना चाहिए, उसे शांति से समझाने का प्रयास करना चाहिए, किन्तु कभी-कभी उसकी गलतियों पर कड़ा रुख अख्तियार करना भी आवश्यक जो जाता है। बच्चों की हर जायज-नाजायज माँगों को मानते चला जाना अच्छी परवरिश नहीं है। किसी भी हालत में बड़े या छोटे के प्रति अड़ियल रुख अपनाना घातक होता है। यह मानकर चलना चाहिए कि परिवार के सदस्यों की खुशी एवं उनका कल्याण ही सर्वोपरी है। इसके लिए अपनी सोच एवं व्यवहार में लचीलापन का परिचय देना चाहिए।

धार्मिक विचार और अनुष्ठान: विज्ञान और तकनीकी सम्पन्नता के इस युग में, अपने संस्कार एवं संस्कृति को भूल जाना बहुत गलत है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में बड़ों के प्रति आदर, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, माता-पिता की सेवा आदि सभी सदगुणों को धर्म-अध्यात्म से, पाप-पुण्य से जोड़ दिया गया था। यह एक सफल प्रयास था सद्विचार एवं सद्व्यवहार को बढ़ावा देने का। इस प्रकार के धार्मिक विचारों एवं अनुष्ठानों को परिवार में जगह दिया जाना चाहिए।

आक्रामक तत्परता: किसी प्रकार की दुर्घटना, परेशानी, बीमारी या खतरा के समय परिवार के सभी सदस्यों को आक्रामक तत्परता का परिचय देना भी अत्यंत आवश्यक होता है। इससे परिवार के सदस्यों पर विश्वास कायम रहता है और वे भय-मुक्त होकर उस परिवार का हिस्सा बने रहने में सुरक्षा अनुभव करते हैं।

सामाजिक मान्यताएँ: परिवार के सदस्यों को इस तथ्य से भी परिचित होना चाहिए कि जीवन में खुशियाँ या सफलता का आरंभ तो परिवार से ही होता है, परंतु अपना परिवार ही सबकुछ नहीं है। परिवार भी समाज की इकाई है और हम जिस समाज में रहते हैं उससे बिल्कुल अलग-थलग रहकर सुखी और सम्मानजनक जीवन नहीं जी सकते। अत: परिवार में उन सामाजिक विचारों एवं क्रियाकलापों को भी स्थान दिया जाना चाहिए जो कि हमें समाज से जोड़कर रखता है। एक व्यक्ति परिवार के साथ-साथ उस समाज का भी सदस्य होता है जिसमें वह रहता है, इसलिए समाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी उसका योगदान होना चाहिए।

भावना पर नियन्त्रण: परिवार के सभी सदस्य चूकि घनिष्टता से जुड़े होते हैं, इसलिए कभी किसी से नाराजगी तो कभी अधिक प्रेम होना स्वभाविक है। ऐसे में अपनी भावना पर इस प्रकार नियन्त्रण रखना आवश्यक होता है जिससे कि किसी के प्रति भेद-भाव या पक्षपात महसूस नहीं हो। किसी से सहमत-असहमत होने का अर्थ यह नहीं होता कि कोई कम महत्वपूर्ण है या अधिक महत्वपूर्ण। जहाँ परिवार के हित की बात होगी वहाँ सबका हित न्यायोचित ढंग से साधने का प्रयास होना चाहिए, न कि भावना में बहकर किसी के प्रति अन्याय या उपेक्षा हो जाए।

मनोविनोद: मनुष्य की अनेक आवश्यकताओं में मनोरंजन या मनबहलाव की आवश्यकता भी एक प्रमुख आवश्यकता है। मनुष्य अपनी खुशी के लिए नित्य नये साधनों की तलाश करता रहता है। परिवार सभी प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति का प्रथम साधन होता है। इसलिए परिवार में मनोरंजन के समुचित साधन सभी के लिए उपलब्ध हों- यह भी आवश्यक हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो मनोरंजन हेतु परिवार के सदस्य बाहर का रुख करने लगते हैं। इससे भी परिवार कमजोर होता है। यही कारण है कि संयुक्त परिवार में विभिन्न संबंधों को अलग-अलग तरह से परिभाषित किया गया था जिसमें कुछ संबंधों में हँसी-मजाक या दिल्लगी को भी प्रमुख स्थान दिया गया था। इसलिए परिवार में मनोविनोद का वातावरण बनाए रखना भी आवश्यक है।

सतत सकारात्मकता: परिवार का वतावरण हमेशा तनावमुक्त, भयरहित, निष्पक्ष और सुरक्षित महसूस होना चाहिए। इसके लिए परिवार में सतत् सकारात्मक संदेश का प्रवाह होना आवश्यक है। अनावश्यक आशंका, भविष्य के प्रति चिंता या भय की बात करने से पारिवारिक संबंध कमजोर होते हैं। सकारात्मक सोच एवं संवाद से परिवार में सुरक्षा, विश्वास एवं आनन्द का वातावरण बनता है।

4.3.2: परिवार की सरंचना (Structure of Family)

मनुष्यों ने समूह में रहना प्रागैतिहासिक काल (Prehistoric period) में ही आरंभ कर दिया था। समाज की आरम्भिक अवस्था में परिवार या विवाह जैसी कोई संस्था नहीं थी। कालक्रम में परिवार एवं इसके भिन्न-भिन्न स्वरूप का उदय हुआ और मानव सभ्यता-संस्कृति के विकास के साथ-साथ परिस्थितियों के अनुसार इसका स्वरूप भी बदलता चला गया । आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के परिवार के विभिन्न प्रकार एवं उसके आधार को हम निम्नलिखित सारणी से समझ सकते हैं।

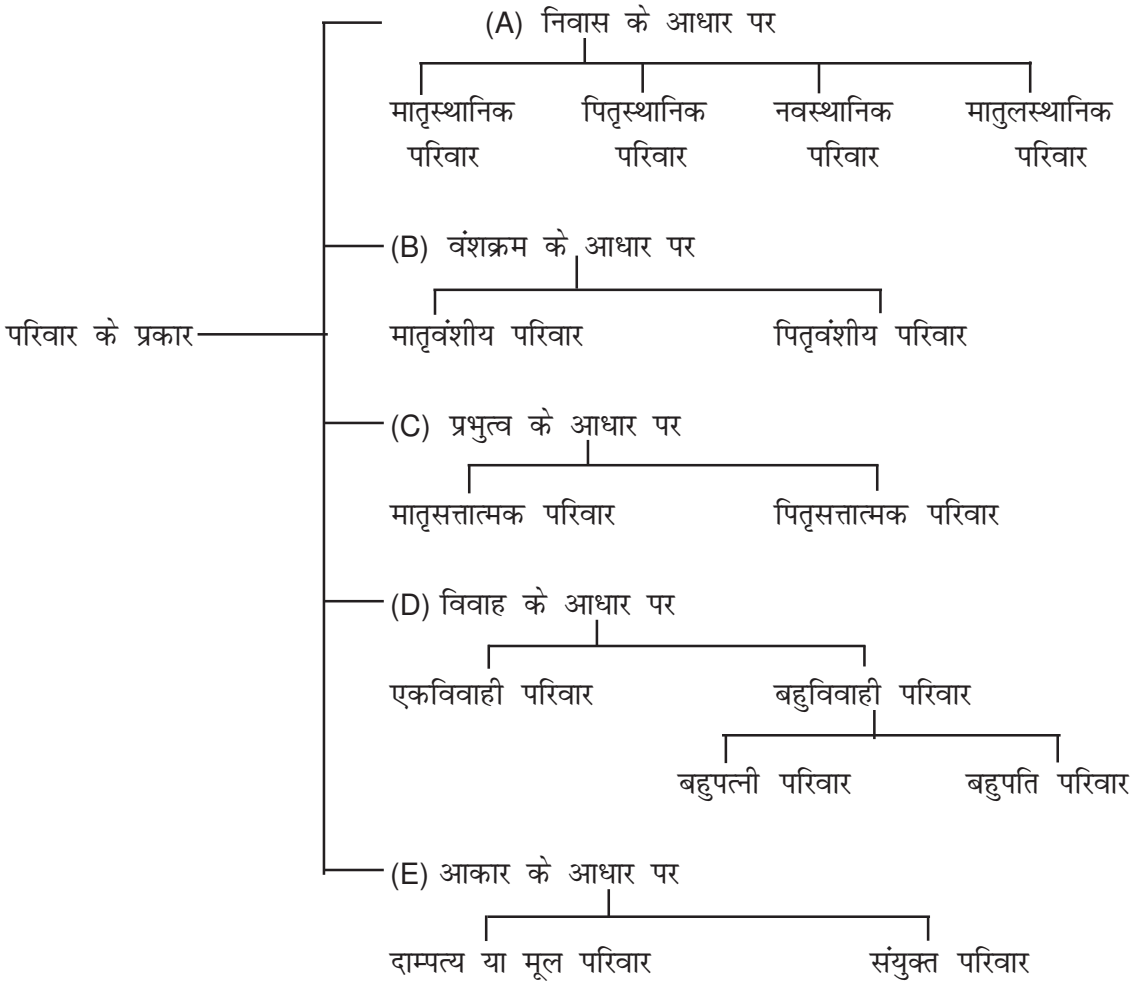

(A) निवास के आधार पर परिवार के चार प्रकार हैं:-

1. **मातृस्थानिक परिवार (Matrilocal Family)** में विवाह के बाद पुरूष अपनी पत्नी के घर में निवास करता है।
2. **पितृस्थानिक परिवार (Patrilocal Family)** में विवाह के बाद स्त्री अपने पति के घर में निवास करती है।
3. **नवस्थानिक परिवार (Neolocal Family)** में पति-पत्नी स्वतंत्र रूप से अपने माता-पिता से अलग निवास स्थापित करते हैं। आधुनिक नगरीय समाज में अब ऐसे परिवारों का चलन बढ़ता जा रहा है।
4. **मातुलस्थानिक परिवार (Avunculocal Family)** के अन्तर्गत विवाहित लड़का अपनी पत्नी के साथ अपने मामा के घर या समुदाय में निवास करने लगता है। मेलानिजिया (Melanesia) की कुछ आदिम जातियों के बीच इस प्रथा का काफी प्रचलन है।

(B) वंशक्रम के आधार पर परिवार के दो प्रकार होते हैं:-

1. **मातृवंशीय परिवार (Matrilineal Family)** में वंशक्रम या नाम माता की ओर से चलता है। इसमें बच्चों की पहचान उसकी माता एवं माता के वंश से होता है।
2. **पितृवंशीय परिवार (Patrilineal Family)** में वंशक्रम या नाम पिता की ओर से चलता है। विवाह के बाद स्त्री अपने पति का उपनाम ग्रहण करती है और उनके बच्चे पिता के वंशनाम के अनुसार पहचाने जाते हैं।

(C) प्रभुत्व के आधार पर परिवार दो प्रकार के होते हैं:-

1. **मातृसत्तात्मक परिवार (Matriarchal Family)** का मुखिया माता या स्त्री होती है। ऐसे परिवार का नियन्त्रण मुख्य रूप से माता या स्त्री में निहित होता है।
2. **पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family)** का सर्वोच्च अधिकार पिता या पुरुष में केन्द्रित होता है। दुनिया के अधिकांश समाजों में ऐसे परिवार का सबसे अधिक चलन है।

(D) विवाह के आधार पर परिवार के दो प्रकार हैं:-

1. **एक-विवाही परिवार (Monogamous Family)** का निर्माण एक पुरुष और एक स्त्री के वैवाहिक सम्बन्धों से होता है। ऐसे परिवार में पति-पत्नी में से किसी की मृत्यु होने पर ही दूसरा पक्ष पुनः विवाह कर सकता है या तलाक द्वारा सम्बन्ध-विच्छेद करने के उपरांत ही दोनों पुनः अपना नया जीवन साथी चुन सकते हैं।
2. **बहुविवाही परिवार (Polygamous Family)** में एक पुरूष का कई स्त्रियों या एक स्त्री का कई पतियों से सम्बन्ध होता है। बहुविवाह के अन्तर्गत बहुपत्नी विवाह सबसे अधिक प्रचलित प्रथा है। बहुपति विवाह बहुत ही कम प्रचलित प्रथा है। ऐसे परिवारों में एक स्त्री के कई पति होते हैं।

(E) आकार के आधार पर परिवार दो प्रकार के होते हैं:-

1. **मूल या दाम्पत्य परिवार (Elementary, Nuclear or Conjugal Family):** आकार की दृष्टि से मूल परिवार सबसे छोटा होता है। इसका निर्माण पति-पत्नी एवं उनके आश्रित बच्चों से होता है। ऐसे छोटे परिवारों में सदस्यों के बीच गहरी अन्तःक्रिया होती है। इन परिवारों के बच्चे वयस्क होते ही अपना अलग दाम्पत्य परिवार बना लेते हैं। पश्चिमी देशों में परिवार का यही स्वरूप व्यापक रूप से प्रचलित है। आजकल भारतीय समाजों में, विशेषकर महानगरों एवं नगरों में इस तरह के परिवार का प्रचलन बढ़ रहा है। मूल परिवार का मुख्य आधार विवाह होता है, इसलिए मूल परिवार को दाम्पत्य परिवार (Conjugal Family) भी कहा जाता है। इसमें अधिक-से-अधिक दो ही पीढ़ी के लोग होते हैं।
2. **संयुक्त परिवार (Joint Family):** संयुक्त परिवार में कई पीढियाँ साथ-साथ निवास करती हैं, उनका जीवनयापन या अर्थोपार्जन का साधन समान होता है और वे परस्पर रक्त सम्बन्धों से जुड़े होते हैं। भारतीय समाज में इस प्रकार के परिवारों का चलन बड़े व्यापक रूप में रहा है। ऐसे परिवार में दादा-दादी, चाचा-चाची तथा चचेरे भाई-बहनों जैसे कई पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते हैं। संयुक्त परिवार की पूरी सत्ता या निर्णय लेने का अधिकार परिवार के एक मुखिया को होता है। परिवार का मुखिया निर्णय लेने से पहले परिवार के अन्य सदस्यों की राय ले सकता है, परन्तु अन्तिम निर्णय मुखिया का ही होता है। इस अर्थ में भारतीय संयुक्त परिवार एक निरंकुश सामाजिक संरचना (Authoritarian Social Structure) है।

भारतीय समाज परम्परागत रूप से कृषि पर आधारित रहा है, जहाँ संयुक्त परिवार में लोग मिलजुल कर खेती का काम करते रहे हैं। खासकर बच्चों के पालन-पोषण एवं बुजुर्गों की देखभाल के लिहाज से आदर्श माना जाने वाला इस तरह के परिवार का चलन अब घटता जा रहा है। वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या का दबाव, छोटे होते जमीन के टुकड़ें, गाँवों में मशीनों का प्रवेश, भौतिकवादी जीवन का दबाव, औद्योगीकरण, आधुनिक रहन-सहन, शिक्षा इत्यादि कारणों से भारतीय संयुक्त परिवार अब सिमटता जा रहा है। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा एवं स्वतंत्र जीवन शैली के प्रति आकर्षण के कारण परिवार का नेतृत्व कमजोर होता जा रहा है। इन परिस्थितियों में संयुक्त परिवार के स्वरूप में भी बदलाव आ रहा है अथवा अब यह सीमित होता जा रहा है।

बदलती परिस्थितियों के साथ-साथ बदलती आवश्यकताओं ने परिवार के स्वरूप को भी बदलने का काम किया है। अब संयुक्त परिवार से छोटा एवं मूल परिवार से बड़ा **विस्तृत परिवार (Extended Family)** का भी चलन बढ़ रहा है। इसमें कम-से-कम दो मूल परिवार के लोग अवश्य होते हैं, जबकि **शाखा परिवार (Stem Family)** के अन्तर्गत एक मूल परिवार के साथ कई सगे-सम्बन्धी होते हैं। पर सगे-सम्बन्धियों का कोई सम्पूर्ण मूल परिवार उसमें नहीं होता है। अक्सर देखने को मिलता है कि भारत में जब किसी को अपनी संतान नहीं होती तो

लोग अपने भाँजे को गोद ले लेते हैं और वही बाद में अपने मामा की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी भी हो जाता है। ऐसे परिवार को भी हम शाखा परिवार (Stem Family) कह सकते हैं।

परिवार का विघटन (Disorganization of Family)

आधुनिक समय की बदलती परिस्थितियों में परिवार की संरचना में भी अनेक परिवर्तन आ गए हैं। इन परिवर्तनों को अब समाजशास्त्री भी परिवार के विघटन के रूप में देख रहे हैं। आधुनिक परिवारों में सदस्यों के बीच तनाव, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और अलगाव की भावना बढ़ती जा रही है। परिवार के सदस्य ही यदि एक-दूसरे के प्रति उदासीन एवं तनावग्रस्त रहने लगते हैं तो पारिवारिक विघटन स्वाभाविक हो जाता है। **इलियट एवं मेरिल (Eliot and Meril)** ने पारिवारिक विघटन के बारे में लिखा है कि ''पारिवारिक विघटन में पति-पत्नी के बीच पाया जाने वाला तनाव ही नहीं आता है, बल्कि बच्चों और माता-पिता के मध्य पनपने वाला तनाव भी आता है।'' सामाजिक-आर्थिक परिवेश में आये परिवर्तन के साथ ही व्यक्ति की आवश्यकताओं में भी परिवर्तन होता रहता है। इन नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु परिवार को समयानुसार अनुकूलन करना पड़ता है। यदि समय रहते समायोजन (Adjustment) का सही रास्ता नहीं निकलता है तो परिवार के सदस्यों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे में परिवार के सदस्य परिवार में अपनी भूमिका को लेकर उदासीन हो जाते हैं और परिवार में मान्य नियमों, परम्पराओं आदि के विपरीत आचरण करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में उत्पन्न संघर्ष पारिवारिक विघटन का कारण बनता है।

पारिवारिक विघटन का ही परिणाम है कि 'लिव-इन रिलेशन', 'होमो सेक्सुअल पार्टनर', 'बिन ब्याही माँ', 'तलाकशुदा पुरूष या स्त्री' जैसी विकृत परिस्थितियाँ आधुनिक समाज में बढ़ती जा रही हैं। वर्तमान समय में परिवार के विघटन के निम्नलिखित कारण हैं:-

1. औद्योगीकरण एवं तकनीकी विकास के उपरांत जीविका के नए और बेहतर साधनों की तलाश में लोग घर-परिवार छोड़कर दूर जाकर रहने एवं बसने लगे। इससे परम्परागत परिवार टूटने लगा।
2. शहरीकरण और आधुनिकता के प्रभाव में लोग परम्परागत परिवार को छोड़कर पति-पत्नी अपने बच्चे को लेकर शहर में रहने लगे।
3. नये-नये रोजगार एवं नौकरी पेशा को अपनाए जाने के कारण परिवार के सदस्यों की स्थिति एवं भूमिकाओं में अनेक परिवर्तन हुए। नारी स्वतंत्रता एवं सशक्तीकरण के कारण महिलाएँ नौकरी-पेशा को अपनाकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हो गयीं। इसके कारण उत्पन्न तनाव ने भी परिवार में विघटन को बढ़ावा दिया।
4. यौन-सम्बन्धों में असंतोष के कारण भी पति-पत्नी के बीच झगड़ा और सन्देह की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और बात तलाक या दूसरी शादी तक पहुँच जाती है। इससे भी परिवार का विघटन होता है।
5. व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा एवं स्वार्थपरता की स्थिति में परिवार के सदस्यों में आपसी सहयोग और विश्वास समाप्त हो जाता है, इससे भी परिवार विघटन की स्थिति में आ जाता है।
6. तीव्र आर्थिक एवं तकनीकी विकास के इस दौर में सामाजिक परिवर्तन की गति इतनी तेज हो गयी है कि एक पीढ़ी का दूसरे के साथ सामंजस्य कठिन हो गया है। परिवार में विचार एवं हित के टकराव के कारण दो पीढियों के बीच इतनी खाई हो जाती है, जिसे पाटना मुश्किल हो जाता है और परिवार टूट जाता है।
7. उच्च शिक्षा प्राप्त कर अच्छी सेवा में जाना और पुनः अपने बच्चे को अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देने की लालसा में भी बच्चे अपने माता-पिता, गाँव-घर, शहर सबकुछ छोड़ देते हैं और परिवार टूट जाता है।
8. परम्परागत तरीके से विवाह की जगह अब प्रेम विवाह लेते जा रहा है, जिसमें परिवार की भूमिका समाप्त प्राय हो जाती है। ये नवदम्पति भी परिवार को महत्व नहीं देते और यदि इनके बीच भी कोई विवाद उत्पन्न हो जाए तो तलाक की स्थिति आसानी से पैदा हो जाती है। इससे संयुक्त परिवार तो पहले टूटता है, बाद में एकल परिवार या मूल परिवार भी टूटने लगता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग पूरी दुनिया में परिवार के विघटन की एक प्रक्रिया चल पड़ी है।

बदलती परिस्थिति में परिवार की संरचना भी अब तेजी से बदल रही है। विस्तृत परिवार या संयुक्त परिवार अब कम होता जा रहा है। उसकी जगह दाम्पत्य परिवार या मूल परिवार (Nuclear Family) का चलन अब बढ़ रहा है। दो परिवारों द्वारा निर्णय लेकर किए जाने वाले परम्परागत विवाह की जगह अब प्रेम विवाह का प्रचलन भी बढ़ता जा रहा है। स्त्री-पुरुष के बीच समानता धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। पत्नी के ऊपर पति या परिवार के प्रभुत्व एवं नियन्त्रण में कमी आ गयी है। परम्परागत नैतिक एवं पारिवारिक मूल्यों में ह्रास के कारण माता-पिता का अपने बच्चों पर नियन्त्रण समाप्त होता जा रहा है। ऐसे में बड़े बुजुर्गों की सेवा एवं देखभाल को अब परिवार में गंभीरता से नही लिया जाता। बिखरते परिवार एवं टूटते दाम्पत्य जीवन में बच्चों को पालन-पोषण एवं सही परवरिश मिलना अब कठिन हो गया है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप नई-नई समस्याएँ एवं चुनौतियाँ भी सामने आयी हैं।

4.3.3: परिवार के उत्तरदायित्व (Responsibilities of Family)

हर व्यक्ति के जीवन में परिवार ही प्रथम एवं सबसे महत्वपूर्ण संस्था होती है जो उसकी समस्त आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति का माध्यम बनता है। मनुष्य एक जैविक एवं सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ अत्यंत संवेदनशील प्राणी भी है। इसलिए उसकी आवश्यकता भौतिक साधनों जैसे- भोजन, वस्त्र, आवास इत्यादि तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसे सामाजिक प्रतिष्ठा और भावनात्मक सहारा भी चाहिए। इसलिए मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में अस्तित्व में आया। दुनिया के हर समाज में किसी-न-किसी रूप में परिवार का उदय होना एक आम घटना रही है। परिवार के बिना समाज या राष्ट्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। साथ ही यह भी सत्य है कि आदिकाल से ही जब से परिवार अस्तित्व में आया है, तब से इसका स्वरूप परिवर्तनशील रहा है। कालक्रम में नये-नये प्रकार के परिवार का उदय होता गया और हर प्रकार के परिवार की अपनी-अपनी कुछ समस्याएँ रही हैं। इन समस्याओं या कठिनाईयों में जब परिवार के सदस्य अपनी भूमिका को नहीं समझ पाते हैं और अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह सही ढंग से नहीं करते हैं, तब इस प्रकार की समस्याएँ आती हैं जो कि अंततः परिवार के विघटन का कारण बनता है।

किसी भी संस्था में उसके सदस्यों की कुछ जिम्मेवारी होती है एवं कुछ कायदे-कानून होते हैं जिसका पालन करना आवश्यक होता है। परिवार भी एक संस्था है जिसके सभी सदस्यों का अपने परिवार के प्रति कुछ उत्तरदायित्व होता है। उम्र और क्षमता के अनुसार एक ही परिवार के सदस्यों का उत्तरदायित्व अलग-अलग होता है। परिवार में किसी की भूमिका बड़ी या छोटी भी हो सकती है, खासकर अर्थोपार्जन के लिहाज से, परंतु उन उत्तदायित्वों को पूरा करना सबके लिए उतना ही महत्वपूर्ण होता है। इसलिए इस उप-इकाई में परिवार के उत्तरदायित्व एवं उसके सदस्यों की भूमिका की चर्चा की जा रही है। साथ ही कुछ ऐसे सुझाव दिए जा रहे है जिसका अनुपालन कर परिवार को विघटन से बचाया जा सकता है और उसे समाज की स्वस्थ इकाई के रूप में विकसित किया जा सकता है।

इस अर्थ में परिवार का उत्तरदायित्व निम्नलिखित है-

1. किसी भी परिवार का प्रथम दायित्व अपने सदस्यों के लिए जैविक आवश्यकता के साधन मुहैया कराना है। वे आवश्यकताएँ भोजन, वस्त्र, आवास आदि है। जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं में अब शिक्षा और स्वास्थ्य भी शामिल हैं। इन सभी भौतिक साधनों को मुहैया करने हेतु अर्थोपार्जन आवश्यक है।
2. परिवार का दूसरा महत्वपूर्ण दायित्व उसके सदस्यों के बीच सहयोग है। अपसी सहयोग के बुनियाद पर ही किसी परिवार का ढाँचा खड़ा होता है। इस सहयोग की आवश्यकता सिर्फ बड़ों को ही नहीं होती, वरन् छोटे बच्चों को भी उसके होम-वर्क आदि में सहयोग करना आवश्यक होता है।
3. परिवार का एक महत्वपूर्ण दायित्व अपने सदस्यों को जीवन जीने के कौशल में निपुण करना है। अच्छी शिक्षा एंव अच्छे विद्यालय प्रदान करने के अतिरिक्त परिवार अपने युवा एवं बच्चे को उन कौशलों में भी प्रशिक्षित करके निपुण बनाता है जिससे कि उसे सामाजिक जीवन में सफलता मिले और देश के योग्य नागरिक के रूप में उसका विकास हो। परिवार में नैतिक शिक्षा का माहौल तैयार करना भी उतना ही आवश्यक है।
4. परिवार का यह भी दायित्व है कि परिवार में उपयुक्त व्यवस्था का विकास करे, नेतृत्व-कौशल का परिचय देते हुए अपने सदस्यों के बीच समर्पण और उत्तरदायित्व की भावना का विकास करे। परिवार के सदस्यों का व्यवहार अनुशासित एवं नियन्त्रित रखे।

5. यौन-आवश्यकता भी मनुष्य की प्रमुख जैविक आवश्यकता है। इसलिए इसकी पूर्ति के लिए परिवार सही समय पर अपने युवा सदस्यों का विवाह सुनिश्चित करे तथा विवाहित सदस्यों को दाम्पत्य जीवन का पर्याप्त आनन्द प्राप्त करने का अवसर मुहैया करे।

परिवार के सदस्यों की भूमिका:

हर परिवार की अलग-अलग परिस्थितियाँ होती हैं। इसके स्वरूप में भी भिन्नता होती है। परिवार के सदस्यों की उम्र एवं योग्यता-क्षमता भी अलग-अलग होती है। परन्तु इन सभी भिन्नताओं के बावजूद हर सदस्य की अपनी-अपनी भूमिका भी होती है। एक स्वस्थ परिवार में हरेक सदस्यों के बीच काम का बटँवारा इस प्रकार न्यायपूर्ण ढंग से होता है कि किसी भी सदस्य पर काम का अधिक दबाव भी नहीं हो और कोई सदस्य भूमिका विहीन भी नहीं हो। परिवार में कई छोटे काम भी महत्वपूर्ण होते हैं जिसमे अलग-अलग सदस्यों का सहयोग अपेक्षित होता है, जैसे- छोटे बच्चे को नहलाना, बच्चे को तैयार कर स्कूल पहुँचाना, स्कूल से वापस बच्चे को घर लाना, बाजार से सब्जी खरीद कर लाना आदि-आदि।

सामान्य तौर पर अपने यहाँ परिवार में पिता का काम पैसे कमाना, घर की व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय लेना, घर से बाहर के काम निबटाना, मकान या गाड़ी की देखभाल करना, बच्चे की उचित शिक्षा की व्यवस्था करना, बिजली आदि के बिल जमा करना, किसी सदस्य के बीमार पड़ने पर उसके इलाज आदि का प्रबंध करना माना जाता है।

परिवार में माता का काम घर के अन्दर की व्यवस्था संभालना, भोजन पकाकर सदस्यों को खिलाना, घर के अन्दर साफ-सफाई करना, बच्चों का पालन-पोषण करना एवं उन्हे कायदा सिखाना, बुजुर्गों की सेवा करना माना जाता है। परंतु अब अपने भारतीय समाज में भी महिलाओं के कामकाजी होने या नौकरी पेशा में जाने का चलन बढ़ रहा है। इस स्थिति में काम का दोहरा बोझ महिलाओं पर पड़ जाता है। इस स्थिति में आवश्यक है कि घर के कामकाज में उन्हे अपने पति या अन्य सदस्यों का सहयोग मिले। परिवार में सबसे कठिन और सबसे बड़ी जिम्मेवारी माँ बनकर छोटे बच्चे को पालना है।

हालाँकि अब संयुक्त परिवार का चलन भारत में भी बहुत घट रहा है तथापि भारत के बहुतेरे परिवार में आज भी बड़े बुजुर्ग अपने बेटे, बहु एवं छोटे बच्चों के साथ रह रहे हैं। बदली परिस्थिति में परिवार में उन्हे भी अपनी सकारात्मक भूमिका निभाना चाहिए। वे भी अपने अनुभव से परिवार का मार्गदर्शन कर सकते हैं। बच्चों की देखभाल में, उन्हें नैतिक शिक्षा देने में सहयोग कर सकते हैं एवं अपने मधुर वाणी एवं व्यवहार से परिवार में खुशनुमा माहौल बनाए रख सकते हैं। बाल्यकाल एवं किशोरावस्था में पल रहे बालक-बालिकाओं का भी कर्तव्य है कि वे बड़ों की बातों को समझने एवं अनुशासन के रास्ते पर चलने का प्रयत्न करें, वे अपने घर के सभी सदस्यों के प्रति गहरे लगाव एवं कृतज्ञता का भाव रखें। अपनी पढ़ाई पर पूरा ध्यान रखते हुए अपने भाई-बहन से सहयोग का व्यवहार बनाए रखें। यथासंभव बड़े-बुजुर्गों की सेवा करें एवं अपने माता-पिता के काम में सहयोग करें।

स्वस्थ परिवार हेतु सुझाव:

1. परिवार व्यवस्था के सही संचालन हेतु आवश्यक है कि परिवार के सभी सदस्यों की भूमिका या दायित्व स्पष्ट रूप से निर्धारित हों और उन्हे बता दिया जाना चाहिए कि सबको अपने कर्तव्य का पालन अनिवार्य रूप से करना है।
2. परिवार के सभी सदस्यों के अधिकार का सम्मान होना चाहिए और उसके काम को महत्व दिया जाना चाहिए।
3. परिवार के सभी सदस्यों को अपने कर्तव्य का पालन पूरे मनोयोग से करना चाहिए तथा किसी भी परिस्थिति में दूसरे के महत्व को कम करके नहीं आकँना चाहिए।
4. परिवार में दमनात्मक एवं कड़े अनुशासन लागू करने के बजाए लोच के सिद्धांत (Principle of flexibility) को अपनाना चाहिए। यह समझना आवश्यक है कि परिवार के कायदे-कानून परिवार के सदस्यों के लिए होता है न कि परिवार के सदस्य उस कायदे-कानून के लिए होते हैं। इसलिए परिवार के सदस्यों का हित एवं उनकी खुशी सर्वोपरी होना चाहिए।

5. व्यक्तिगत दु:ख बीमारी या दुर्घटना की स्थिति में या किसी सदस्य के अवसाद ग्रस्त होने पर परिवार के सभी सदस्यों को उसका सहारा बनकर पेश आना चाहिए। वैसी परिस्थिति मे दु:खी एवं जरूतरमंद सदस्य की सेवा प्राथमिकता में होनी चाहिए नक कि अन्य कामों को प्राथमिकता देना चाहिए।
6. परिवार के सदस्यों से कितना भी मतान्तर हो, उनके साथ संवाद बन्द नहीं करना चाहिए धीरज रखकर बार-बार स्वस्थ वार्तालाप का अवसर निकालकर, उनके साथ विचारों को साझा कर, सबकी बात को महत्व देते हुए किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयास करना चाहिए।
7. परिवार में दूसरे का विचार कितना भी गलत लगे, उसे सुनना अवश्य चाहिए। दूसरे की बात का किसी भी हालत में माखौल नहीं उड़ाना चाहिए।
8. परिवार मे कम उम्र के लड़के-लड़कियों को भी उसके लायक छोटा-छोटा काम करने के लिए प्रोत्साहन करें। काम सही कर लेने पर उसकी प्रशंसा करें और त्रुटि होने पर उन्हे आवश्यक प्रशिक्षण भी दें।
9. परिवार में बच्चों एवं युवाओं को मार्गदर्शन देने के साथ-साथ उन्हे स्वयं भी निर्णय लेने का अवसर दें। यदि उनका निर्णय सही साबित हो तो प्रशंसा अवश्य करें। यदि उनके निर्णय गलत साबित हो जाएँ तो उस पर खीझे नहीं और न ही उनका माखौल उड़ाएँ। ''मैं तो पहले ही कहा था''- जैसे शब्दों के प्रयोग से निराशा और तनाव को बढ़ावा मिलता है। इससे परिवार का माहौल बिगड़ता है। इसकी जगह यह कहना चाहिए कि गलती होना जीवन का अहम् हिस्सा है और गलतियों से सबक लेकर जीवन में आगे बढ़ने में ही समझदारी है।

इस प्रकार के सुझावों का पालन कर एवं अपने पारिवारिक कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वाह कर सुखी एवं स्वस्थ परिवार का निर्माण किया जा सकता है।

4.4: नाराजगी का निराकरण - समायोजन (Neutralization of Anger - Adjustability)

परिवार किसी भी व्यक्ति के जीवन की पहली और सबसे महत्वपूर्ण संस्था होती है। मनुष्य की आवश्यकताएँ एवं अपेक्षाएँ अनंत हैं। इन सभी आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं की पूर्ति का प्रथम साधन हर व्यक्ति परिवार या परिवार के मुखिया या किसी सदस्य को मानता है। परिवार के सदस्यों के बीच पर्याप्त अंत:क्रिया होती है और वे गहराई से एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। किसी भी व्यक्ति का जीवन उसके परिवार या परिवार के सदस्यों से सर्वाधिक प्रभावित होता है। यह प्रभाव हमेशा साकारात्मक या मनोनुकूल नहीं होता। जब परिवार में किसी व्यक्ति की इच्छा या पसंद के विरूद्ध कोई कार्य होता है तो नाराजगी और क्रोध उत्पन्न होता है। जब परिवार के किसी सदस्य की कोई माँग नहीं मानी जाती है या परिवार के किसी सदस्य द्वारा उसके कार्य में बाधा पहुँचाई जाती है तो वह नाराज हो जाता है। इस नाराजगी का निराकरण समय रहते नहीं हो तो आपसी विवाद इस हद तक बढ़ जाता है कि परिवार के विघटन एवं विनाश का कारण बन जाता है । इसलिए नाराजगी के उन कारणों को समझना एवं उनका निदान कराना आवश्यक होता है।

परिवार में जहाँ विभिन्न उम्र के सदस्य होते हैं, नाराजगी बच्चे, बूढ़े, जवान किसी को भी हो सकती है। परिवार में उत्पन्न नाराजगी के भिन्न-भिन्न कारण हो सकते हैं-

1. किसी भी परिवार में युवा या वयस्क सदस्य पर ही अर्थोपार्जन के साथ-साथ अन्य कार्यो का दबाव भी होता है। जिम्मेवारियों के बोझ एवं अन्य सदस्यों के व्यवहार से असंतुष्ट होने के कारण नाराजगी पनपती है।
2. संयुक्त परिवार में बच्चे, बूढ़े, भाई, उनकी पत्नी, बहन आदि की अपेक्षाओं पर खरा उतरने का दबाव भी होता है और उनके साथ सामंजस्य भी बैठाना पड़ता है। इसमें किसी भी प्रकार का असंतुलन नाराजगी को बढ़ाता है।
3. दाम्पत्य या मूल परिवार में भी पति-पत्नी के बीच सही सामंजस्य नहीं रहने पर या एक-दूसरे के अनुकूल व्यवहार नहीं करने पर नाराजगी उत्पन्न होती है।
4. युवा एवं प्रौढ़ सदस्यों के बीच स्वार्थपरता उत्पन्न होने, अहम या महत्वाकांक्षा के टकराव होने से भी

नाराजगी उत्पन्न होती है। परिवार में जब किसी की आय अधिक तो किसी की कम, तो ऐसी स्थिति में भी तनाव उत्पन्न होता है। वैचारिक मतभेद या अलग-अलग पसंद के कारण भी तनाव और नाराजगी परिवार में होती है।

5. यदि परिवार में लिंग के आधार पर भेद-भाव होता है और स्त्रियों की उपेक्षा होती है या लड़कियों की देखभाल सही नहीं होती है तो इससे भी नाराजगी उत्पन्न होती है। यदि भाई-भाई में भी बड़े या छोटे होने के कारण किसी को कम महत्व मिलता है तो इससे भी नाराजगी पैदा होती है।

6. परिवार में अब बच्चों एवं किशोरों की भी आवश्यकताएँ बहुत बढ़ गयी हैं। यदि उन्हे भी उनके पसन्द का कोई सामान नहीं दिया जाता है या अपने मन से कोई काम करने की छूट नहीं दी जाती है तो इस स्थिति में वे भी नाराज हो जाते हैं। बच्चों एवं किशोरों की नाराजगी भी अब इतनी उग्र रूप धारण कर लेती है कि वे बात-बात में अपने माता-पिता की सरेआम बेइज्जती कर बैठते हैं और हिंसा पर उतारू हो जाते हैं।

7. परिवार में अपनी उपेक्षा से बड़े-बुजुर्ग भी असन्तुष्ट और नाराज रहते हैं। उनकी नाराजगी इस बात को लेकर होती है कि उन्हे अब कोई महत्व नहीं देता, उनके लिए अब किसी के पास समय नहीं है, उनकी सेवा की किसी को परवाह नहीं हैं।

नाराजगी के निराकरण के उपायः-

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार के सदस्यों के बीच अनेक कारणों से विभिन्न परिस्थितियों में नाराजगी उत्पन्न होती है। पारिवारिक जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं जिसमें नाराजगी का उत्पन्न होना स्वभाविक होता है। इन परिस्थितियों से भी ज्यादा परिवार के सदस्यों की मनःस्थिति के कारण नाराजगी उत्पन्न होती है। यहाँ वैसे कुछ उपायों की चर्चा की जा रही है जिससे कि परिवार में नाराजगी को नियंन्त्रित कर उसका निराकरण किया जा सके।

- परिवार में किसी प्रकार की नाराजगी हो तो तुरंत उसपर प्रतिक्रिया देने से बचना चाहिए। यह मानकर चलना चाहिए कि कभी किसी खास कारण से या गलतफहमी की वजह से भी कोई सदस्य नाराज हो सकता है। उस समय यदि प्रतिक्रया दी जाती है तो क्रोध भड़कता है और कहा-सुनी की स्थिति उत्पन्न होती है। इस स्थिति में स्वयं चुप रह जाना एवं नाराज सदस्य को शांति से सुन लेना बहुत अच्छा रहता है।

- यदि कोई नाराज हो तो मन में अपनी बात रखने के बजाए लोगों को अपनी नाराजगी बता दें, यह ज्यादा अच्छाा रहता है ताकि उसकी नाराजगी को सुन-समझकर उसका निराकरण किया जा सके।

- क्रोध या नाराजगी के समय अपना ध्यान उससे हटाने और चित्त को शांत करने के लिए ध्यान, प्राणायाम या कोई व्यायाम का सहारा लेना भी महत्वपूर्ण होता है। ऐसे में एक-दो बार गहरी साँस लेने से या कुछ देर आसपास टहल लेने से भी क्रोध शांत हो जाता है।

- क्रोध या नाराजगी की स्थिति में कुछ भी बोलने से पहले यदि थोड़ा सा भी सोच-विचार कर लिया जाए तो समस्या का समाधान निकलना आसान हो जाता है। बिन सोचे अनाप-शनाप बोल देने से या जवाब देने से नाराजगी बढ़ने लगती है।

- अपने मन में नाराजगी पालने या उसे व्यक्त करने से पहले नाराजगी के कारण एवं उसके संभावित समाधान का विचार भी कर लेना चाहिए। नाराजगी या समस्या से अधिक ध्यान उसके समाधान पर केन्द्रित करना चाहिए और उसकी चर्चा भी करनी चाहिए ताकि नाराजगी का निराकरण हो सके।

- अपनी ही बात करने और अपने ही जिद्द पर अड़े रहने की भूल नहीं करें। गलतफहमी किसी को भी हो सकती है। परिस्थितियाँ हमेशा एक जैसी नहीं रहती हैं, परेशानियाँ आती हैं तो जाती भी हैं, इसे ध्यान में रखकर कभी भी अपना आपा नहीं खोना चाहिए।

- परिवार में हास्य विनोद का वातावरण बनाए रखने से भी निराशा और नाराजगी दूर रहती है। नकारात्मक चर्चे से बचना चाहिए। अनावश्यक भय, सन्देह एवं संभावित खतरों की बात कर परिवार में निराशा का वातावरण नहीं बनने देना चाहिए। किसी के मन में असुरक्षा का भाव नहीं भरना चाहिए।
- परिवार में प्रेरक कहानियों या विचारों के माध्यम से भी नाराजगी को दूर किया जा सकता है। नाराज व्यक्ति भी आशा, विश्वास एवं उत्साह से भरा प्रेरक प्रसंग एवं लेख पढ़े या भाषण सुने तो उसकी मनः स्थिति बदल जाती है और नाराजगी का निराकरण जो जाता है।

नाराजगी या परेशानी की स्थिति में कुंठाग्रस्त हो जाने या अपने परिवार के सदस्यों पर क्रोधित रहने के बजाए उनसे खुलकर बिना संकोच किये सहायता लेनी चाहिए। आखिर कठिनाई की घड़ी में आपके परिवार वाले सहायता नहीं करेंगे तो कौन करेगा? फिर आप उनके प्रति कृतज्ञ रहिए और समय आने पर उनकी भी सहायता के लिए तैयार रहिए।

परिवार में समायोजन (Adjustment in Family)

परिवार बड़ा हो अथवा छोटा, उसमें एक से अधिक सदस्य होते हैं और उनके आपसी हित में टकराव या विचारों में भिन्नता अक्सर देखने को मिलता है। आपसी हित का टकराव, मतान्तर या विवाद की स्थिति भी हमेशा एक जैसी नहीं होती है, क्योंकि पारिवारिक संबंध और एक-दूसरे से अपेक्षा बड़ी ही जटिल प्रकृति की होती है। कभी-कभी तो समझना भी मुश्किल जो जाता है कि आखिर विवाद किस बात को लेकर है। ऐसे में समायोजन ही एकमात्र रास्ता है जिससे कि परिवार को कमजोर होने या विघटित होने से बचाया जा सकता है। जब परिवार में दो विरोधी व्यक्ति या दो विरोधी पक्ष विवाद या संघर्ष को समाप्त कर सहयोग करने को तैयार होते हैं तो वे एक-दूसरे के साथ समायोजन स्थापित करते हैं। समायोजन एक सहयोगी प्रक्रिया है। समायोजन संघर्षरत व्यक्तियों या समूहों को जोड़ने की प्रक्रिया है। **जे० एच० फिक्टर (J.H.Ficter)** ने समायोजन को इस प्रकार परिभाषित किया है- ''समायोजन को एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक व्यक्ति या समूह संघर्ष रोकने, कम करने या समाप्त करने के लिए अंतःक्रिया करते है। "(Accommodation may be defined, therefore, as that form of social process in which two or more persons or groups interact in order to prevent, reduce or eliminate conflict.)"

परिवार में उत्पन्न असुरक्षा की भावना, गलतफहमी, आपसी ईर्ष्या या बढ़ी हुई महत्वाकांक्षा के कारण टकराव या संघर्षमयी परिस्थिति उत्पन्न होती है, परन्तु सामान्यतः कोई व्यक्ति या समूह हमेशा संघर्ष करना पसंद नहीं करता। ऐसे में संघर्ष की स्थिति को टालने के लिए जो समझौता किया जाता है, उसे ही समायोजन कहते हैं। यह समायोजन संघर्षरत् व्यक्तियों के बीच या तो स्वयं या किसी मध्यस्थ के द्वारा स्थापित किया जाता है। समायोजन भी एक बार स्थापित हो जाने का मतलब यह नहीं होता कि अब आगे कभी उनमें तनाव, विवाद या संघर्ष नहीं होगा और वे हमेशा सहयोग की ओर ही बढेंगे। समायोजन एक प्रकार का समझौता होता है जिसमें विवाद का अंश या बीज भी शेष रह जाता है। इस प्रकार समायोजन को समस्या का स्थायी हल नहीं माना जा सकता, किन्तु संघर्ष या तनाव को कुछ समय के लिए टाला अवश्य जा सकता है।

अनेक दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने जीवन को ही समझौता माना है। पारिवारिक जीवन तो और भी समझौतों से भरा होता है और समझौता किए बिना पारिवारिक जीवन चल ही नहीं सकता। **एच०जी० वेल्स (H.G. Wales)** के अनुसार - ''समझौता करने की बुद्धिमानी सीखिए, क्योंकि टूटने के बजाए थोड़ा झुक जाना ज्यादा बेहतर है।'' (Learn the wisdom of compromise, for it is better to bend a little than to break.) समझौता कर लेने या सामंजस्य स्थापित कर लेने का अर्थ यह नहीं होता कि आप गलत हैं और दूसरे सही; बल्कि इसका अर्थ यह होता है कि आप अपने अहम से ज्यादा महत्व अपने परिवार को एवं पारिवारिक सम्बन्धों को देते हैं। मनुष्य अकेला जीवन नहीं जी सकता, उसे किसी-न-किसी के साथ समझौता करके, सम्बन्धों में जुड़कर सहयोग की दिशा में बढ़कर जीवन जीना होता है। ऐसे में परिवार के सदस्यों से सामंजस्य स्थापित कर जीवन जीने में ही

बुद्धिमानी होती है। सामंजस्य स्थापित करके ही विभिन्न उम्र के लोग, विभिन्न क्षमता वाले लोग एक परिवार में एक साथ जीवन जी सकते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि किसी सदस्य में असुरक्षा की भावना उत्पन्न कर या डरा-धमकाकर स्थापित किया गया सामंजस्य लम्बे समय तक नहीं चल सकता। भय जिसका आधार हो, वह शांति कभी भी स्थायी नहीं हो सकती। सामंजस्य हमेशा इस विचार पर आधारित होना चाहिए कि परिवार एवं उसके सदस्यों की आवश्यकता हर एक-दूसरे को है। अपना दायित्व पूरा करना और परिवार में सामंजस्य स्थापित करके जीने में ही सबका सुख और सबकी समृद्धि है। परिवार बड़ा हो या छोटा समझौता करना ही पड़ता है। पारिवारिक विघटन किसी समस्या का समाधान नहीं है। पति-पत्नी का सम्बन्ध भी सामंजस्य स्थापित करके ही कायम रहता है। यदि पति-पत्नी भी आपस में समझौता करके नहीं चलते हैं तो उनका भी सम्बन्ध टूटता है, बच्चों को सही परवरिश नहीं मिल पाती और अन्ततः जीवन में निराशा के अतिरिक्त कुछ नहीं हासिल होता। दूसरी ओर जो लोग जिद्द पर अड़े रहने के बजाए थोड़ा झुक जाते हैं, अपने स्वार्थ से समझौता कर लेते हैं, उनलोगों का परिवार कायम रह जाता है। वही परिवार फिर उनके सुख-दुख का साथी और सहयोगी साबित होता है।

आधुनिकता एवं भौतिकता के इस दौर में पारिवारिक विघटन की शिकायत अब सामान्य हो गयी है जिसके कारण जीवन विवादग्रस्त और विषादग्रस्त होता चला जाता है और अंततः आत्महत्या जैसी दुःखद घटना घटती है। अब बात-बात पर परिवार टूट रहे हैं। सबकी शिकायत रहती है कि अब कोई समझौता करना नहीं चाहता। छोटा बच्चा अपने जिद्द पर कायम रहता है, उसे जो खिलौना पसन्द आ गया वह चाहिए ही। किशोरावस्था में ही बच्चे अपने माता-पिता को बेवकूफ समझने लगते हैं। उन्हें लगता है कि उनके माता-पिता अब 'अप-टु-डेट' नहीं हैं। वे अपनी बात उग्रता या उद्दंडता का प्रदर्शन करके मनवाना चाहते हैं। माता-पिता भी अपने बच्चों से डरे-सहमे रहते हैं कि उनका लाडला कहीं ऐसा-वैसा न कर बैठे। बड़े-बुजुर्ग भी बदली हुई पारिवारिक परिस्थितियों एवं बच्चों-युवाओं की आवश्यकताओं की पहचान नहीं कर पाते और बात-बात में अपने को उपेक्षित समझकर असंतोष जाहिर करने लग जाते हैं। परिवार में युवा या प्रौढ़ सदस्यों को लगता है कि वे सबके लिए इतना कुछ कर रहे हैं, पैसे भी कमाकर परिवार को चला रहे हैं फिर भी उनके काम को कोई महत्व नहीं दे रहा है, सबको शिकायत ही शिकायत है। ऐसे में परिवार में समायोजन कठिन हो जाता है।

यदि परिवार का कोई भी सदस्य अपनी ही समस्याओं या अपेक्षाओं को लेकर सिर्फ अपने ही बारे में सोचता है तो समायोजन की स्थिति नहीं बनती है। समायोजन एक प्रक्रिया है जिसमें सहयोगात्मक सोच एवं व्यवहार का परिचय देना पड़ता है। समायोजन का आरंभ इस विचार से होता है कि परिवार की आवश्यकता सभी को है। परिवार सहयोग से चलता है, इसमें सबकी जिम्मेवारी होती है। अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हुए सबको कुछ-न-कुछ समझौता अवश्य करना पड़ता है। महानता इस बात में नहीं है कि कोई अपने ही जिद्द पर कायम रहे, बल्कि सहयोग का हाथ बढ़ाने से ही समस्या का समाधान होता है। यहाँ तक कि बड़े-बुजुर्ग एवं परिवार के कम सक्षम सदस्य भी अपनी क्षमता के अनुसार उपयोगी कार्य में हाथ बँटाने लगते हैं और शिकवे-शिकायत को अनदेखा करके अच्छा व्यवहार करते रहते हैं तो समायोजन का एक स्वस्थ वातावरण परिवार में बनता है। सहयोग, समझौता एवं सामंजस्य पर आधारित ऐसा परिवार ही सुखी परिवार होता है।

4.5 पारिवारिक जीवन के खतरे - परिवार एवं समाज में महिलाओं की स्थिति (Threats of Family Life - Status of Women in Family and Society)

वर्तमान दौर में परिवार के समक्ष कुछ ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं जिससे कि पारिवारिक जीवन खतरें में पड़ गया है। जिस प्रकार परिस्थितियाँ बदली हैं, लोगों के सोचने का तरीका बदला है, परिवार के सदस्यों के दृष्टिकोण, मूल्यों, विचारों आदि में जो संकीर्णता आयी है उसने परिवार के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है। आधुनिक परिवारों में सदस्यों के बीच जिस प्रकार का तनाव, स्वार्थपरता, ईर्ष्या, घृणा और अलगाव की भावना देखने में आती है उसने परिवार के स्वरूप एवं उसकी उपयोगिता पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। अब परिवार

में उन मूल्यों, आदर्शों एवं प्रतिमानों का खुलकर विरोध किया जा रहा है, उसे अप्रासंगिक बताया जा रहा है, जिसके आधार पर परिवार के सभी सदस्य एक सूत्र में बँधकर रहते हैं।

समय एवं परिस्थितियों के बदलाव के साथ ही जीवन के सभी क्षेत्र में परिवर्तन आना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। आवश्यकता में परिवर्तन के साथ ही पारिवारिक परम्परा एवं सोच में भी परिवर्तन आते रहे हैं। इन परिवर्तनों के साथ समायोजन स्थापित करके ही चुनौतियों का सामना किया जा सकता है और परिवार को विघटन से बचाया जा सकता है। स्पष्ट है कि परिवार का अस्तित्व उसके सदस्यों के बीच प्रेम और सहयोग की भावना पर ही आधारित होता है। यदि परिवार के सदस्य अपने कर्तव्यों को नहीं समझते हैं, पारस्परिकता की भावना के प्रति उदासीन हो जाते हैं और परिवार में अपेक्षित व्यवहार के विपरीत आचरण करने लगते हैं तब पारिवारिक जीवन खतरे में पड़ जाता है। पारिवारिक जीवन के समक्ष उपस्थित ये खतरे निम्नलिखित हैं-

1. **वैयक्तिक महत्वाकांक्षा:** आधुनिक युग में हर व्यक्ति की महत्वाकांक्षा बढ़ गयी है। वह परिवार के अन्य सदस्यों को दरकिनार कर स्वयं अपनी हैसियत बढ़ाना चाहता है। अधिक पैसा कमाने एवं ऊँचा पद पाने की लालसा में वह पारिवारिक हितों की अनदेखी करते चला जाता है।
2. **भौतिक सुखों की चाह:** आज के भौतिकवादी दौर में हर व्यक्ति अधिक-से-अधिक धन इकट्ठा कर भौतिक सुखों को भोगना चाहता है। ऐसे में वह अपनी अनंत लालसा की पूर्ति में लग जाता है। एक के बाद एक सामान खरीदता चला जाता है, लेकिन उसे संतुष्टि नहीं मिलती। ऐसे में परिवार भावना का सर्वथा अभाव हो जाता है।
3. **हितों की एकता का अभाव:** परिवार में सबकी स्थिति एवं आवश्यकता एक जैसी नहीं होती; किन्तु परिवार भावना के तहत सबका हित साधना जरूरी होता है। वर्तमान में लोग इतने स्वार्थी होते जा रहे हैं कि वे अपनी कमाई को अपने ही बीवी-बच्चे में लगाना चाहते हैं । ऐसे में हितों की एकता के अभाव के कारण परिवार खतरे में पड़ जाता है।
4. **सामाजिक संरचना में परिवर्तन:** सामाजिक आर्थिक संरचना में जो परिर्वतन आये हैं, उसमें अब परिवार के सदस्यों का दायरा सीमित नहीं रह गया है, परिवार में उनकी भूमिका और स्थिति अब पहले की तरह निश्चित नहीं रह गयी है। अब महिलाएँ भी सामाजिक रूप से स्वतंत्र होकर घर के बाहर की गतिविध यों में शामिल हो रही हैं। यदि घर की कोई महिला किसी नौकरी पेशा में या व्यापार से जुड़कर पैसा कमाने लगती है तो उसपर सिर्फ अपना ही अधिकार बताती है और परिवार के अन्य सदस्यों को अपनी कमाई का कोई हिस्सा देना नहीं चाहती।
5. **मत भिन्नता एवं पीढ़ियों के बीच खाई:** जेनरेशन गैप की बात कोई नई बात नहीं है, किन्तु आधुनिक समय में परिर्वन की गति इतनी तीव्र है कि एक ही परिवार के सदस्य भिन्न-भिन्न मत रखने एवं उस अनुसार व्यवहार करने लगते हैं। इस प्रकार अलग-अलग विचार एवं पसंद से परिवार में तनाव उत्पन्न होता है।
6. **औद्योगीकरण और शहरीकरण:** औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रिया से जो आर्थिक स्वावलम्बन एवं स्वच्छंद जीवन शैली को बढावा मिला है, इसने परिवार के समक्ष खतरा उत्पन्न किया है। इस परिस्थति में जीवन जीविका के लिए परिवार से दूर जाकर रोजी-रोजगार की शुरूआत की जाती है, उससे परिवार व्यवस्था पर खतरा उपस्थित होता है।
7. **विवाह का महत्व घटना:** भारतीय परिवार में विवाह जन्म-जन्मान्तर का पवित्र बन्धन माना जाता था, किन्तु आधुनिकता के दौर में अब विवाह का महत्व घट गया है। बात-बात में पति-पत्नी में संबंध -विच्छेद या तलाक अब आम बात हो गयी है। इससे परिवार के ढाँचे पर ही खतरा उत्पन्न हो जाता है।
8. **समय एवं प्रतिबद्धता का अभाव:** आज के तेज रफ्तार जिन्दगी में किसी के पास किसी के लिए समय

ही नहीं है। सभी अपनी-अपनी महत्वाकांक्षा या लालसा की पूर्ति में लगे हैं। यहाँ तक कि अब बड़े-बुजुर्गो की कौन कहे, बच्चे के लिए भी माता-पिता के पास समय नहीं है। ऐसे में परिवार के सदस्यों के बीच लगाव और प्रतिबद्धता का अभाव हो जाता है।

9. **इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का प्रभाव:** तकनीकी विकास ने आज हर किसी को प्रभावित किया है। बच्चे वीडियो गेम्स में व्यस्त हो जाते हैं, किशोर बालकों पर मोबाइल और इन्टरनेट का धुन सवार रहता है। अब तो प्रौढ़ या वयस्क सदस्य भी सोशल मीडिया से जुड़कर अपना मन बहलाव करते हैं और घर में बडे-बुजुर्ग टेलीविजन पर समाचार या अन्य मनोरंजक कार्यक्रम देखने में अपनी खुशी ढूँढ़ते हैं। वाट्स-अप और फेसबुक की कल्पित दुनिया को ही आज के युवा अपना सब कुछ मानने लगे हैं।

10. **धार्मिक-आध्यात्मिक सोच का अभाव:** अब प्राचीन धार्मिक मूल्यों एवं परम्पराओं का लोप होता जा रहा है। जिसमें संतान को भगवान का रूप माना जाता था। बड़े-बुजुर्गो की सेवा को पुण्य का काम माना जाता था। बड़ों के अनादर को अधर्म और माता-पिता के अपमान को पाप माना जाता था। परोपकार और नैतिकता से भरे अध्यात्मिक सोच और शिक्षाप्रद कहानियों को अब परिवार में स्थान नहीं दिया जाता।

11. **यौन-सम्बन्धित व्यवहार में परिर्वतन:** यौन सम्बन्धित विचारों में सर्वत्र परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आज के युवा अपने यौन-जीवन को या विवाह को माता-पिता की इच्छा पर छोड़कर, पति-पत्नी तक सीमित होकर नहीं रह जाना चाहते। यहाँ तक कि विकासशील देशों एवं मुस्लिम समाज तक में, विशेषकर शहरों में अब लोग खुलकर जीवन जीना पसन्द कर रहे हैं। अपनी यौन-सुन्तुष्टि के लिए परिवारिक मान्यताओं से हटकर किया जानेवाला व्यवहार भी परिवार के लिए खतरा उत्पन्न कर रहा है।

आधुनिकता के इस दौर में परिवार जैसी संस्था के समक्ष ऐसे अनेक खतरे उत्पन्न हो गए हैं कि परिवार के भविष्य पर ही सवालिया निशान खड़ा हो गया है। तथापि अनेक समाजशास्त्री यह मानते हैं कि परिवार का भविष्य खतरे में नहीं है बल्कि इसका स्वरूप अपने पुराने ढ़ाँचे को छोड़कर नया रूप ले रहा है। हाल में वाशिंगटन की सड़कों पर लगभग पाँच हजार युवक-युवतियों का एक जुलूस निकला जिसका उद्देश्य समाज को बचाने के लिए परिवार- भावना को मजबूत करना, शादी-विवाह के बन्धन को अटूट बनाना तथा एक जीवन साथी के प्रति वफादारी के लिए अपनी आवाज बुलन्द करना था। असल में अति सम्पन्नता से ऊबे एवं यौन-स्वच्छंदता के परिणामों से चिंतित लाखों लोग अब परम्परागत परिवार व्यवस्था की ओर पुन: लौटने को उतावले हो रहे हैं। बढ़ते बाल-अपराध की घटनाओं, किशोर मानसिकता में आयी विकृतियाँ, एड्स जैसी बीमारियों का संक्रमण एवं वृद्धावस्था में देखभाल की चिन्ता ने अब लोगों को यह सोचने को विवश कर दिया है कि 'ये कहाँ आ गए हम तेरे (आधुनिकता) साथ चलते-चलते'। आये दिन अवैध-सम्बन्धों से उपजे तनाव, बढ़ती हिंसा, बलात्कार की खबरें, आपाधापी और गलाकट प्रतिद्वन्द्विता के बीच आदमी का जीवन सुखी नहीं रह सकता है। समाज की धुरी परिवार है और परिवार की धुरी स्त्री है- इस तथ्य को स्वीकारना होगा, तभी हमारे बच्चों का भविष्य सुरक्षित रह सकता है, वृद्धों की देखभाल संभव हो सकती है और हम समृद्ध हो सकते हैं।

4.5.1: भारतीय परिवार की स्थिति

परम्परागत रूप से भारत कृषि प्रधान गाँवों का देश रहा है जहाँ संयुक्त परिवार का चलन होता था। गाँव के लोगों की एक बिरादरी होती थी और जातिगत ऊँच-नीच की भावना के बावजूद पूरा गाँव भाई, बहन, चाचा-चाची, दादा-दादी, फुआ, भाभी आदि के रिश्ते में एक-दूसरे से जुड़ा था। शादी-विवाह से लेकर कोई भी छोटे-बड़े निर्णय लेने में पूरे ग्रामीण समाज की उसमें भूमिका होती थी और हर काम में पारस्परिक निर्भरता और साझेदारी भी होती थी। उदहारण के तौर पर कई ऐसे खेतिहर परिवार होते थे जिनके पास एक बैल होता था, वे दूसरे वैसे ही किसान के साथ साझेदारी कर, तालमेल बिठाकर बैलों का जोड़ा लगा लेते थे और बारी-बारी से उनके जोड़ा बैल से दोनों किसानों के खेत में हल जोतने का काम होता था। अब आर्थिक एवं तकनीकी प्रगति से उत्पन्न स्थिति में सारे काम के लिए विशेषज्ञ व्यवसायी मिल जाते हैं। यहाँ तक कि धार्मिक संस्कारों या शादी-विवाह के अवसर पर पूरे काम का एकमुश्त जिम्मा लेने वाले एजेन्सी भी बन गए हैं। आपको बस फोन लगाना है और पैसे

देना है। आज अपने यहाँ यह व्यवस्था 'प्रगति' का पैमाना बन गया है। ऐसा नहीं करने पर या जात-बिरादरी मानने वाले को पिछड़ा मान लिया जाता है। आज पारिवारिकता में सीमित अधिकार को पिछड़ापन माना जाता है जबकि आधुनिकता से उपजी अधिकार सम्पन्नता और स्वच्छंदता को लोग विकास के तौर पर देखते हैं।

संयुक्त परिवार का टूटना भारत में भी अब आधुनिकता की दृष्टि से प्रगति है। संयुक्त परिवार में मुखिया की जो तानाशाही चलती थी, उसकी खुलेआम आलोचना हो रही है। अनेक ऐसे किस्से सुनने को मिल जाते हैं कि फलां को उसके परिवार के मुखिया ने आगे की पढ़ाई नहीं करने दिया या नौकरी पर जाने से रोक दिया। जो परिवार की मुखिया की अवज्ञा कर नौकरी करने बाहर निकल गया आज उसके बच्चे बीवी खुशहाल हैं और जो गाँव घर में रहकर त्याग का, सेवा का परिचय दिया उसकी स्थिति दयनीय है। एक तरह से गाँव ही उसकी नियति बनकर रह गयी। जहाँ जिस स्थिति में पैदा हुआ, वहीं का होकर उसी स्थिति में रह गया। खेती योग्य जमीन टुकड़ों में बँट गये और गाँव-घर को पकड़कर रहने वाला इंसान न घर का रहा न घाट का। उसके बच्चे सही शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। नौकरी-पेशे को अपनाने एवं घर-बार छोड़कर जो व्यक्ति परिवार के साथ जुड़ा रहा और अपनी सारी कमाई परिवार को देता रहा, उसे भी इस बात का अफसोस होता है कि संयुक्त परिवार से जुड़े रह जाने के कारण वह अपने बच्चे की ही सही परवरिश नहीं कर पाया। उसके पैसे घर के मुखिया के हाथ में जाते रहे और उसी की बीवी-बच्चे की उपेक्षा होती रही।

उपरोक्त स्थिति में मूल परिवार के स्वरूप को आदर्श मानकर लोग 'मैं तुम और हमारे बच्चे' वाले परिवार का मॉडल अपनाते चले गये। कुछ समाजशास्त्रियों का तर्क है कि मूल परिवार से ही तेज आर्थिक तरक्की एवं सबकी प्रगति का अवसर मिलता है। सभी लोग अपने-अपने काम और कमाई का महत्व समझते हैं, अपने बच्चे को सही परवरिश दे पाते हैं और उन्नत जीवन-स्तर को प्राप्त कर पाते हैं । ऐसे परिवार में बच्चों को प्रारंभ से यह समझाया जाता है कि अपना करिअर बनाओ, पैसे कमाओ और बड़ी पूँजी का मालिक बनकर अपनी पहचान बनाओ। मूल परिवार के प्रचलन के साथ ही बच्चों की संख्या भी अब सीमित हो चली है। विभिन्न प्रकार के गर्भ निरोधक तकनीक एवं टेस्ट ट्यूब बेबी आदि के प्रयोग से अब परिवार के आकार को सीमित रखना तथा 'क्रेच' आदि की सुविधा लेकर बच्चों को पाल लेना भी अब इस स्थिति में आसान लगने लगा है। अब तो पैसे कमाने के लिए पति-पत्नी तक दो शहरों में रहने लगे हैं और कहीं-कहीं तो यौन सुख के लिए एक दूसरे को छूट या स्वतंत्रता भी दे देते हैं।

मूल परिवार के प्रचलन के बावजूद आज भी खासकर गाँवों में ऐसे अनेक परिवार हैं जिन्होंने एक तरह से बीच का रास्ता निकाल लिया है और संयुक्त परिवार का अस्तित्व पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। ऐसे परिवार के नौकरी-पेशा वाले सदस्य गाँव-घर से दूर जाकर नौकरी करने लगते हैं, अपने बीवी-बच्चे को भी अपने पास रखकर उसे बेहतर परवरिश देने लगते हैं किन्तु पर्व-त्यौहार एवं शादी-विवाह के हर मौके पर वह अपने घर चले आते हैं और नियमित आर्थिक सहयोग भी अपने संयुक्त परिवार को करते रहते हैं। इसके लिए वह अपनी कमाई या वेतन का कुछ हिस्सा हर माह अपने परिवार के मुखिया या माता-पिता को भेजते रहते हैं। इतना ही नहीं वे अपनी छुट्टियाँ भी घर पर आकर बिताते हैं और इस दरम्यान संयुक्त परिवार के कार्य में घर-बाहर अपना हाथ भी बँटाते हैं। नौकरी-पेशा या व्यापार को अपनाए कुछ लोग अब अपने बच्चे को बेहतर शिक्षा दिलाने के लिए निकटवर्ती शहर में जाकर रहने लगते है। किन्तु गाँव वाले घर पर नियमित रूप से आकर अपना काम कर जाते हैं और अपने लिए गाँव से अनाज, हरी सब्जी, फल या दूध भी ले जाते हैं। इस स्थिति में भी परिवार पूरी तरह विघटित होने से बच जाता है।

कुल मिलाकर खासकर माध्यमवर्गीय भारतीय परिवार आज एक विरोधाभास से गुजर रहा है। एक ओर वह चाहता है कि उसके बच्चे अच्छी नौकरी-पेशा या व्यापार को अपनाकर अधिकाधिक पैसे कमाए, बहु भी कमाऊ मिल जाए और दोनो मिलकर अधिक पैसे कमाकर अपने बच्चों को भी खूब सुख-मौज से रखें और अपने अभिभावक को भी नियमित मोटी रकम भेजते रहें। दूसरी ओर उन्हे अपने लिए सेवा और समय भी चाहिए। बहु के हाथ का खाना भी उन्हें चाहिए। उन्हें अपना दिन याद पड़ने लगता है कि किस प्रकार उन्होंने सबकुछ सहकर

अपने परिवार को बचाया था, बड़े बुजुर्गों की सेवा की थी, बच्चों को अच्छी परवरिश एवं अच्छे संस्कार दिए थे। अब लोग चाहते हैं कि बेटों के साथ-साथ बेटियों को भी अच्छी शिक्षा मिले, असका भी 'करिअर' बने, उसे भी अपनी नौकरी-पेशा को अपनाकर परिवार के साथ रहने या अलग रहने की स्वतंत्रता मिले। बेटी जब चाहे अपने माता-पिता के पास अपने पति को लेकर पहुँच जाए, परंतु बहु के मामले में इतना अधिकार, इतनी स्वतंत्रता उन्हे नागवार हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय परिवार भी अनेक परिवर्तनों को अपनाता हुआ एक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। परिवार का जो पुरातन तानाशाही स्वरूप था, उसकी जगह अब स्वतंत्रता ने ले लिया है। संयुक्त परिवार की जगह अब मूल परिवार लिए जा रहा है। आर्थिक और तकनीकी विकास उपलब्धियों से भरा प्रतीत होता है, परंतु बाल अपराध, वृद्धों की उपेक्षा एवं पारिवारिक विघटन का स्तर चिंताजनक हो गया है।

4.5.2: परिवार एवं समाज में महिलाओं की स्थितिः-

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः परिवार एवं समाज में महिलाओं की स्थिति आदिकाल से ही पुरुषों की तुलना में कमजोर रही है। उन्हे कभी भी पुरुषों की बराबरी में नहीं रखा गया। आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े परिवारों में स्त्रियों की स्थिति आज भी दयनीय और दुखद है। ऋग्वेदिक काल के प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अच्छी थी उनकी शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा था कि वेद की ऋचाओं की रचना में गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी स्त्रियों का भी नाम आता है। इस काल में विद्या, धन एवं शक्ति की देवी के रूप में स्त्री की पूजा का आरंभ हुआ। परंतु परिवार एवं समाज में तब भी उनकी स्थिति परुषों की तुलना में कमजोर थी। उस समय भी समाज पितृसत्तात्मक और परुष प्रधान ही था। उत्तर-वैदिक काल से ही स्त्री शिक्षा को लेकर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगने लगे थे। उनके अधिकार एवं स्वतंत्रता में तरह-तरह की कटौती की जाने लगी थी। परिवार में किसी प्रकार की गलती करने पर या पति से असहमत होने पर पुरुष को यह अधिकार मिला हुआ था कि वे स्त्रियों को दण्डित कर सकते थे- ऐसा मनुस्मृति में भी है। इसलिए स्त्रियों को अधिकार एवं उनकी स्थिति को लेकर प्राचीनकाल से ही भेद-भाव देखने में आता है। महावीर एवं महात्मा बुद्ध ने भी जब 5वीं-6ठी ईसा पूर्व में भारत में सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन चलाया तो उसमें भी स्त्रियों की उपेक्षा की गयी। कालिदास की रचनाओं एवं चीनी यात्री व्हेनसांग के वर्णन में भी देवदासी की चर्चा मिलती है जो कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के साथ भेद-भाव और शोषण का उदाहरण है। हालांकि उस समय भी राज-परिवार या कुलीन वर्ग की स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। उनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी और शिक्षित स्त्रियों का समाज में सम्मान था। स्त्रियों की बद से बद्तर स्थिति का आरंभ 9वीं-10वीं शताब्दी से होती है।

मध्ययुगीन बर्बरताः मध्यकाल में 9वीं-10वीं शताब्दी में बार-बार के विदेशी आक्रमणों ने स्त्रियों के अधिकार एवं उनकी स्वतंत्रता पर कुठाराघात किया। स्त्रियों की सुरक्षा एवं पवित्रता को कायम रखने के नाम पर तरह-तरह की बंदिशों का सामना उन्हें करना पड़ा। इससे उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण हो गयी। बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा जैसी कुरीतियों ने उनसे शिक्षा का अवसर छीन लिया। शिक्षा विहीन होकर, घर के अन्दर कैद होकर स्त्रियाँ कमजोर होती चली गयीं और उनका जीवन धीरे-धीरे नारकीय होता चला गया। सबसे भयानक दुर्भाग्य तो यह था कि विधवाओं का पुनर्विवाह बन्द हो गया और उसकी जगह सती प्रथा ने लिया जिसमें पति की मृत्यु के बाद हिन्दू स्त्रियों को उनके पति की चिता के साथ ही जिन्दा जला दिया जाता था। जातिगत भेद-भाव एवं छुआ-छूत की कुप्रथा के कारण स्त्रियों का जीवन नारकीय हो गया। उत्तर मध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों की हैसियत एक दासी या भोग्या (भोग की वस्तु) के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गयी। एक ऐसा भी दौर आया जब एक राजा अपनी कामेच्छा (Sexual desire) की पूर्ति हेतु किसी राज्य की राजकुमारी या रानी को प्राप्त करने के लिए हजारों सेनाएँ सजाकर उस राज्य पर हमला कर देता था जिसमें दोनो ओर से सैकड़ों-हजारों सैनिक मारे जाते थे।

19वीं-20वीं सदी के आन्दोलनः 19वीं सदी के आरंभ से ही भारत में जो समाज सुधार का आन्दोलन

प्रारंभ हुआ उसकी चिन्ता के केन्द्र में स्त्रियों की समस्याएँ थी। भारतीय नवजागरण या पुनर्जागरण के जनक कहे जाने वाले राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ जोरदार आन्दोलन चलाया। उनके प्रयास का परिणाम था कि ब्रिटिश सरकार ने 1828 में कानून बनाकर सती प्रथा को प्रतिबन्धित कर दिया। राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्म समाज' ने बंगाल और पूर्वी भारत में सती प्रथा और बहु-विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया और स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया। इसी प्रकार ज्योतिबा फुले द्वारा स्थापित प्रार्थना समाज ने महाराष्ट्र एवं पश्चिमी भारत के अन्य राज्यों में स्त्रियों के उत्थान के लिए जोरदार आन्दोलन चलाया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के प्रयास से विधवा पुनर्विवाह कानून पास कराया गया। इसी प्रकार थियासोफिकल सोसाइटी के माध्यम से एनी बेसेन्ट ने तथा रामाबाई रानाडे जैसी आन्दोलनकारी महिलाओं ने स्त्रियों की स्थिति एवं उनकी शिक्षा में सुधार हेतु अनेक प्रयास किये। ज्योतिबा फुले ने सत्य-शोधक समाज के माध्यम से दलित या शूद्र कही जाने वाली स्त्रियों को उच्च जाति की स्त्रियों से मिलाने का काम किया ताकि उनके जीवन में भी जागरूकता और सुधार आये। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कुछ महिलाओं के अदम्य साहस की कहानी लोगों के जुबान पर छा गयी। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और अवध की नवाब बेगम हजरत महल ने जिस बहादुरी से अपने राज्य की रक्षा हेतु ब्रिटिश सेना के खिलाफ युद्ध किया, वह सबके लिए उदाहरण बन गया। इसी प्रकार कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सरोजिनी नायडू का काम अत्यन्त सराहनीय रहा। महात्मा गाँधी और भीमराव अम्बेडकर ने भी स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु अनेक प्रयत्न किये।

वर्तमान स्थिति: वर्तमान दौर में भी औरतों के खिलाफ हिंसा एवं यौन उत्पीड़न की क्रूरतम घटनाएँ नित्य नये-नये रूप में सामने आ रही है। पुरुष प्रधान समाज को मानो घर के भीतर और घर के बाहर स्त्रियों को हर तरह से उपेक्षित, प्रताड़ित और शोषित करने का खुला अधिकार मिल गया हो - ऐसा प्रतीत होता है। तभी तो औरतों को सरेआम बेइज्जत कर देना, बेरहमी से मार-पीट या बलात्कार कर देना, बार-बार धमकी देकर दहेज के लिए जिन्दा जला देना, हत्या कर देना - प्रतिदिन के समाचार की सुर्खियों में छाया रहता है। पितृसत्तात्मक समाज में पुलिस, कानून, धर्म, जाति-व्यवस्था या सरकार सभी औरतों के खिलाफ होने वाली हिंसक घटनाओं को भी उतनी गंभीरता से नहीं लेते।

पारिवारिक स्थिति: औरतों के साथ भेद-भाव एवं हिंसा का कहर सर्वप्रथम उसके परिवार में ही आरंभ होता है, वह भी उसके जन्म के पहले से ही। बच्चियों को सबसे पहले तो भ्रूण-हत्या के द्वारा उनसे जन्म लेने का अधिकार ही छीन लिया जाता है। लड़की के जन्म लेने के बाद आज भी ज्यादातर परिवारों में वह खुशी नहीं मनाई जाती है जो कि लड़का के जन्म लेने पर मनाया जाता है, क्योंकि उसी समय बच्ची को 'पराया धन' जैसी उपाधि से विभूषित कर दिया जाता है। उसके पालन-पोषण में शुरू से ही भेदभाव बरता जाता है और कच्ची उम्र में ही उसे 'तुम लड़की हो न!' जैसे शब्द सुनने को मिलने लगते हैं। वह बचपन में ही इसे अपनी नियति या भाग्य मानकर स्वीकार कर लेती है कि उसे अपने ही परिवार में उपेक्षित हो कर रहना है, मार-पीट, डाँट-फटकार सबकुछ सहकर, सहमकर रहना है, उसी के भाई को अच्छे से खाने-पीने, रहने, शरारत करने और अपनी बहन को पीटने तक सारे अधिकार प्राप्त हैं किन्तु उसे शुरू से ही सबकुछ सहना है और सोच-समझकर व्यवहार करना सिखाया जाता है, आखिर वह लड़की है न!

जब बात लड़की की पढ़ाई-लिखाई की आती है तो उसमें भी उसकी बहुत कम सुनी जाती है। घर-परिवार वाले ही निर्णय लेते हैं कि उसे कब तक पढ़ना है, क्या पढ़ना है, कहाँ पढ़ाई करनी है आदि-आदि। फिर शादी-विवाह की बात आती है तो उसकी पसन्द क्या है, यह पूछने-जानने की जरूरत नहीं पड़ती। अपने परिवार की इज्जत की खातिर जिस परिवार में, जैसे भी लड़के से उसकी शादी तय कर दी जाए - उसे स्वीकार करना पड़ता है। आधुनिक परिवारों में स्त्री-शिक्षा को तो पर्याप्त अवसर दिया गया, परंतु पुरुषों की बराबरी में रखने से परहेज किया। आधुनिकता के ऐसे प्रवर्त्तकों ने स्त्री शिक्षा को पैसे कमाने या नौकरी के लिए आवश्यक नहीं माना, बल्कि विवाह के बाद उसे शिक्षित परिवार का सदस्य बनना है, बच्चों का अच्छे से पालन-पोषण करना है और पति को अच्छी 'कम्पनी देना' है, इसके लिए स्त्री-शिक्षा को आवश्यक बताया। स्त्री-शिक्षा को इसलिए भी आवश्यक माना गया कि यदि पति के साथ कभी कुछ ऐसा-वैसा हो गया तो नौकरी आदि कुछ करके अपना परिवार चला ले।

आधुनिक और शिक्षित परिवारों ने औरतों को नौकरी की छूट भी दे दी ताकि आर्थिक उन्नति के दौर में हमारा परिवार पिछड़ नही जाए। एक तरह से कमाई के मामले में 'डबल इंजन' वाली स्थिति को बेहतर माना गया, किन्तु औरतें परिवार के लिए तो नौकरी कर सकती हैं, परिवार की कीमत पर यह स्वीकार नहीं। कहने का मतलब यह है कि अब जबकि प्रगति का पैमाना पैसा है, औरतों का कमाऊ होना जरूरी हो चला है। साथ ही उसे घर का सारा काम-काज भी निबटाना है, बच्चे का बेहतरीन पालन-पोषण भी करना है, घर के बड़े-बुजुर्गों की सेवा भी करनी है और यह सब करने के बाद पति के बराबर या उससे अधिक पैसे कमा रही हो तो भी उसे पति को मालिक समझना है, उसका रोब बर्दाश्त करना है, अपनी कमाई पर गुमान करना तो दूर की बात उसपर अपना अधिकार भी नहीं जताना है। कुल मिलाकर उसे वह सारा व्यवहार करते रहना है जिससे कि कहीं उसका परिवार न गड़बड़ा जाए। स्त्री अगर आज्ञाकारी और महत्वहीन बनी रहकर घर-बाहर का सारा काम करती रहे तभी परिवार सही से चल सकता है। जहाँ स्त्री ने अपना महत्व जताया या अधिकार खोजा कि परिवार टूटने लगता है। औरतों द्वारा किये गये घरेलू काम को कभी भी कोई महत्व इस रूप में नहीं दिया गया कि आखिर उसके भी काम की कोई कीमत है। हमेशा से यह समझा गया कि कमाकर तो मर्द ही लाता है। अब स्त्री-सशक्तिकरण के उपरांत जो स्त्री-शिक्षा एवं उनकी आर्थिक निर्भरता में वृद्धि हुई है, उसने उनके शोषण एवं उत्पीड़न का भी नया संस्करण तैयार कर दिया है। कार्य-स्थल पर महिलाओं को नित्य नए-नए तरह से लैंगिक भेद-भाव का सामना करते हुए अपना काम करना पड़ता है। फिर जब वे घर में प्रवेश करती हैं तो सबसे पहले बच्चा लिपटकर बोलता है- 'मम्मी ! मेरे लिए आज क्या लायी? बड़ी भूख लगी है।' उससे कम काम किया हुआ पति घर में थक कर बैठा पत्नी का इंतजार कर रहा है कि पत्नी आयेगी तो चाय-नाश्ता बनाकर देगी। इतना ही नहीं घर के बड़े-बुजुर्ग भी नाराज हैं कि ऐसी नौकरी से भला क्या फायदा? औरतों के जिन घरेलू कार्यों को मर्द आसान और महत्वहीन समझते हैं, ज्यादा नहीं सिर्फ साल में पाँच दिन लगातार करके तो देखें, समझ में आ जाएगा। ये बातें अगर घर में औरतें बोल दें तो मर्द मार-पीट पर उतर आ सकता है। स्त्रियों के लिए तो ऐसी सोच रखना भी गुनाह है।

सामाजिक स्थिति- महिलाओं की समाज में भी स्थिति खराब है। यदि किसी को सिर्फ लड़की है तो बेचारगी या हीन समझा जाता है। आज भी लड़केवालों का दर्जा ऊँचा माना जाता है। शादी-विवाह के लिए लड़की वालों को लड़के वाले के यहाँ जाने का चलन ही ज्यादा है। इतना ही नहीं लड़की वाले दहेज के रूप में मोटी रकम, कीमती गहने, गाड़ी या अन्य ढेर सारे सामान लड़के वालों को देते हैं। उसके बाद भी लड़के वालों को ही कुछ भी बोलने या करने की छूट होती है लड़की वाले को सिर्फ सहना पड़ता है, इस डर से कि उनकी लड़की लड़के वाले के परिवार में जा रही है। अगर कुछ त्रुटि हो गयी तो लड़की को बहुत कुछ सहना पड़ेगा ।

यह समाज के दकियानूसी सोच का ही नतीजा है कि महिलाओं के खिलाफ कहीं शोषण या हिंसा होती है तो उसके पीछे महिला की ही गलती ढूँढ ली जाती है। यदि किसी लड़की या महिला का बलात्कार होता है ऐसे में भी लड़की क्या पहनी थी, उसे उस समय घर से निकलने की जरूरत क्या थी, उसे उस ऑटो में बैठने को कौन कहा था - जैसे बेहूदे सवालों पर बहस होने लगती है। इतना ही नहीं सारे गंदे काम (मार-पीट, बलात्कार, छेड़छाड़ आदि) पुरुष कर दे तो भी उनकी पवित्रता पर कोई आँच नहीं आती, उल्टे जिस लड़की या औरत के साथ ऐसा हुआ उसे ही अपवित्र, कुल्टा या बहिष्कृत मान लिया जाता है, जबकि वह तो पीड़ित है, उसने कोई घटिया काम नहीं किया है। दहेज का दानव आये दिन वधुओं को जलाकर राख कर देता है, परंतु ऐसा करनेवालों का समाज खुलकर बहिष्कार नहीं करता, बल्कि कोई मजबूर बेटी वाला वैसे ही दानव के परिवार में पुनः अपनी बेटी की शादी को तैयार हो जाता है। आदिकाल से लेकर अब तक के समाज में स्त्रियों के लिए ही 'अग्नि-परीक्षा' का प्रावधान है। इस मामले में दलित स्त्रियों की स्थिति और भी दुखद है। समाज ने उन्हे हर तरह से शोषण और प्रताड़ना की वस्तु मान लिया है। संवेदनहीनता की हद तो यह है कि उपभोग की वस्तु के रूप में वे स्त्रियाँ आकर्षक लगती हैं, उनसे हर प्रकार की सेवा लेना भी अच्छा लगता है, किन्तु उनके खिलाफ हिंसा या बलात्कार की खबर समाज को उद्वेलित या बेचैन नहीं करता है।

इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी महिलाओं की स्थिति देखें तो निराशा होती है। आज भी महत्वपूर्ण

राजनीतिक पद हों या नौकरी-पेशा की बात हो तो महिलाएँ पूरी दुनिया में हाशिये पर हैं। औरतों पर आधिपत्य बनाये रखना, उनको शारीरिक, मानसिक यातनाएँ देना या परिवार की परम्परा तोड़ने पर कड़ी सजा देना पुरुष अपनी मर्दानगी समझता है। आधुनिक युग में फ्रांस की क्रांति और अमेरिका की स्वतंत्रता के बाद जो लोकतंत्र स्थापित हुआ तो पुरुषों को मताधिकार (Voting Right) मिल गया। परन्तु उसी मताधिकार को प्राप्त करने के लिए स्त्रियों को एक लम्बे अर्से तक संघर्ष करना पड़ा। ऐसी स्थिति तो भारत या दुनिया के अन्य विकासशील देशों में भी देखने को नहीं मिलती है जहाँ आजादी के तुरंत बाद स्त्री-पुरुष सभी को मताधिकार मिल गया। आज भी दुनिया के बहुत कम देशों की राष्ट्राध्यक्ष (राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री) महिलाएँ हैं। भारत के कुछ ही राज्यों में महिला मुख्यमंत्री या राज्यपाल हैं। लोकसभा या राज्यसभा में भी महिलाओं की संख्या पुरुषों की तुलना में बहुत कम हैं, जबकि वे 'आधी आबादी' हैं। सशक्त प्रधानमंत्री के रूप में श्रीमती इंदिरा गाँधी को पूरी दुनिया में ख्याति मिली। किरण वेदी ने पुलिस प्रशासन में उल्लेखनीय योगदान दिया। ऐसे अनेक उदाहरणों के बावजूद आज का भी पुरुष प्रधान समाज महिलाओं की पराधीनता की ही वकालत करता है।

स्त्रियों के शोषण, दमन, और उनके प्रति भेद-भाव का ही नतीजा था कि 1901 की जनगणना के अनुसार भारत में प्रति एक हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या 972 ही थी जो कि अगले सौ वर्षो में लगातार गिरती चली गयी और 2001 की जनगणना में भारत में प्रति एक हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या सिर्फ 933 रह गयी। केरल एवं पुडुचेरी के अलावे भारत के सभी राज्यों या केन्द्रशासित प्रदेशों में महिला अनुपात कम है। 2001 की तुलना में 2011 में महिला अनुपात में थोड़ी वृद्धि दर्ज की गयी और 2011 में यह संख्या बढ़कर 940 पर पहुँची, फिर भी प्रति एक हजार पुरुष जनसंख्या पर आज भी स्त्रियों की संख्या में पर्याप्त कमी है। हरियाणा, पंजाब जैसे राज्यों में तो यह संख्या 900 से भी कम है। हरियाणा जहाँ प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या देश में सबसे कम 830 है, वहाँ से अभी लगातार दिल दहला देने वाली बलात्कार एवं महिला-उत्पीड़न की घटनाएँ सामने आ रही है, इस तथ्य पर भी समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता है। इसी प्रकार 1901 में जब पहली बार जनगणना हुई तो उसमें भारत का कुल साक्षरता प्रतिशत मात्र 5.4 था। इसमें पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का प्रतिशत बहुत कम पाया गया (पुरुष 9.8%, स्त्री 0.7%)। अर्थात् लगभग 143 स्त्रियों में एक स्त्री साक्षर थीं। आज भी वर्तमान साक्षरता का प्रतिशत देखें तो स्त्रियों का प्रतिशत पुरुषों की तुलना में लगभग 22% कम है (पुरुष 82%, स्त्री 65.5%)। गाँव की तुलना में अब शहरों में बेटियों को बेटे की तरह ही पालन-पोषण करने एवं बेहतर शिक्षा देने की ललक तो बढ़ी है, लेकिन उनके खिलाफ हिंसा एवं यौन-शोषण की क्रूरतम घटनाओं ने भी अभिभावकों को झकझोर कर रख दिया है। ऐसे में 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओं' का नारा भी बेकार प्रतीत होता है। स्त्रियाँ परिवार की धुरी होती हैं, उनके कमजोर होने से परिवार कमजोर होता है। परिवार कमजोर करके स्वस्थ समाज और समृद्ध राष्ट्र की कोरी कल्पना से कुछ हासिल होनेवाला है नहीं। इसलिए स्थिति को सही-सही समझकर महिलाओं की स्थिति को सुधारने एवं उन्नत बनाने की आवश्यकता है।

4.6 जरूरतमंद और बुजुर्गों की देखभाल - विचार और सरोकार साझा करने हेतु समय निर्धारित करना (Caring for needy and elderly - time allotment for sharing ideas and concerns)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसके सम्पूर्ण जीवनकाल में उसकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति में उसके परिवार की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। मनुष्य के जीवनचक्र में जन्म से मृत्यु तक कई अवस्थाएँ आती हैं। युवावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के बाद वृद्धावस्था भी जीवन का एक अपरिहार्य अंग है। दुर्भाग्य से यदि किसी की दुर्घटना या बीमारी के कारण मृत्यु नहीं हुई तो उसके जीवन में वृद्धावस्था भी अन्य अवस्थाओं की तरह अवश्यंभावी होती है। जैसे कि **विलियम होल्डेन (William Holden)** का कहना है- ''बुढ़ापा एक अपरिहार्य प्रक्रम है। मैं निश्चित रूप से बड़ा होकर छोटा नहीं बनना चाहूँगा। जैसे-जैसे आप उम्र में बड़े होते जाते हैं, आप अधिक जानते हैं, आपके ज्ञान का बैंक खाता बहुत समृद्ध हो जाता है।'' (Aging is an inevitable process, I surely wouldn't want to grow younger. The older you become, the more you know, your bank account of knowledge is much richer.) दुनिया के ज्यादातर देशों में वृद्धावस्था का आरंभ 65 वर्ष की उम्र

से माना जाता है। अपने देश में भी वृद्धावस्था का आरंभ मानकर कुछ सेवाओं में 60 तो कुछ में 62 या 65 वर्ष की उम्र पूरा करने पर सेवानिवृत्त कर दिया जाता है। वृद्धावस्था आरंभ होने की उम्र को लेकर भले ही कुछ विवाद हो, परंतु निर्विवाद रूप से यह अवस्था शारीरिक रूप से कमजोर और अपेक्षाकृत रोगग्रस्त अवस्था होती है। इसलिए कोई व्यक्ति बूढ़ा नहीं होना चाहता है। **एन्डी रूनी (Andy Rooney)** के अनुसार 'यह विरोधाभास है कि लम्बा जीवन जीने का विचार तो सभी को आकर्षित करता है, लेकिन बूढ़ा होना किसी को भी अच्छा नहीं लगता है।'' (It's paradoxical that the idea of living a long life appeals to everyone, but the idea of getting old doesn't appeal to anyone.)

वृद्धावस्था तक आते-आते व्यक्ति के अनुभव का दायरा तो विस्तृत हो जाता हैं, परंतु शारीरिक-मानसिक शक्ति में उत्तरोत्तर ह्रास होने लगता है। वृद्ध व्यक्ति में दक्षता तो होती है, परंतु वह अपनी कार्यक्षमता खो बैठता है। वह अपने बुद्धि को व्यवहार में लाने योग्य नहीं रह जाता और धीरे-धीरे पराश्रित होकर रह जाता है। ऐसे तो हर अवस्था में आदमी को आदमी की जरूरत होती है, परंतु इस अवस्था की यह विडम्बना होती है कि सब कुछ जानते-समझते हुए भी वह स्वयं इतना शक्तिहीन हो जाता है कि हाथ-पैर पर नियंत्रण नहीं रह जाता और शेष जीवन में उसके सबल-स्वस्थ होने की संभावना भी नहीं रह जाती है। एक तरह से यह जीवन का अवसान काल होता है जिसमें मृत्यु का भय, निराशा आदि वृद्ध को घेरने लगता है। घर-परिवार के लोग भी उससे ऊबने लगते हैं, उसकी उपेक्षा करने लगते हैं ऐसे में अपने ही घर में, अपनों के बीच ही जब बुजुर्ग तिरस्कृत होने लगते हैं तो जीवन भार प्रतीत होने लगता है और एक अनकही पीड़ा से वे दिन-रात गुजरते रहते हैं। उन्हे अपने जीवनभर का किया धरा सब तुच्छ लगने लगता है जब अपने ही परिवार में अपना अस्तित्व तलाशने या दरबदर भटकने को वे मजबूर हो जाते हैं। 'मातृ देवो भव:, पितृ देवो भव:' का मंत्र देने वाले भारत देश में भी बुजुर्ग शब्द दिमाग में आने पर अब उम्र व विचारों से परिपक्व सम्मानित व्यक्ति की छवि सामने नहीं आती; बल्कि एक उपेक्षित, पीड़ित, जर्जर शरीर वाला जीवन से थका, ऊबा, हारा व्यक्ति ही ध्यान में आता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। संयुक्त परिवार के टूटने के साथ ही आज की युवा पीढ़ी भूलती जा रही है कि बुजुर्ग अनुभवों का वह खजाना है जो हमें जीवन के कठिन मोड़ पर उचित मार्गदर्शन दे सकते हैं। वे बोझ नहीं, बल्कि हमारे घर की शोभा हैं। एक समय था जब बुजुर्ग घर के मुखिया बनकर सभी सदस्यों का प्यार, सम्मान और सेवा प्राप्त करते थे। बुजुर्ग भी अपने अनुभवों से बड़ो को दिशा-निर्देश तथा बच्चों को नैतिक, व्यवहारिक शिक्षा देने का कार्य करते थे। परन्तु आज की शहरी आधुनिक जीवन शैली, आर्थिक आपाधापी, पीढ़ियों के बीच विचार-भिन्नता के कारण आजकल की युवा पीढ़ी बुजुर्गो के प्रति निष्ठुर, उदासीन और कर्तव्यहीन हो गई है। बुजुर्गों को इस प्रकार बोझ समझकर उपेक्षित कर देना सही नहीं है। यह समझना होगा कि बुजुर्ग भी परिवार के सदस्य हैं, उन्होने बहुत कठिनाई उठाकर हमारे जीवन को सजाने, सँवारने का काम किया है। उम्र भर जो बुजुर्ग हमारे लिए कुछ-न-कुछ करते ही रहे, आज हमारा भी उनके प्रति कुछ कर्तव्य है। फिर हम भी तो कभी बूढ़े होंगे, हमें भी तो फिर अपने बच्चे की सेवा की आवश्यकता पड़ेगी। जिस घर में बुजुर्गों का अपमान या तिरस्कार होता है, वहाँ सुख-शांति का अभाव हो जाता है। वैसे घर में बच्चों को अच्छा संस्कार नहीं मिलता। **पॉप फ्रांसिस (Pope Francis)** के अनुसार - ''जो जन समुदाय अपने बुजुर्गों, बच्चों और युवाओं की देखभाल नहीं करती, उसका कोई भविष्य नहीं होता क्योंकि यह अपनी चेतना और प्रतिज्ञा दोनो को गाली देना है। (A population that does not take care of the elderly and of children and of the young has no future, becuase it abuses both its memory and its promise) **शुभम राठौड़** की ये पंक्तियाँ युवाओं को अपने मस्तिष्क में बिठा लेना चाहिए कि-

''कभी नम न हो पाएँ घर के बुजुर्गो की आँखें,
छत से पानी टपके तो दीवारें कमजोर होती हैं।''

यह सही है कि आज की भाग-दौड़ भरी जिन्दगी में बुजुर्गों की देखभाल कठिन हो गयी है। जीवन की बदली परिस्थितियों ने युवाओं के सामने भी अनेक कठिनाईयाँ खड़ी कर दी हैं। उसपर से बुजुर्ग भी अपनी असीमित इच्छाएँ थोपने लगें, युवाओं की मजबूरी को नहीं समझकर उनसे असंतुष्ट रहने लगें और शिकायत करके जग हँसाई

पर उतर जाएँ तो इससे भी समस्या का समाधान नहीं होने वाला है। इसमें सारा दोष युवा पीढ़ी का ही नहीं है। इसके लिए असल दोषी पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण है जिसका सपना खुद हमारे बुजुर्गो ने कभी अपने बच्चों को दिखलाया था। इतना ही नहीं हमारे बुजुर्गों ने पैसा-पैसा जोड़कर अपनी गाढ़ी कमाई को बच्चों की पढ़ाई में लगाया, उसे देश-विदेश पढ़ने को और फिर ज्यादा-से-ज्यादा पैसा कमाने नौकरी पर भेजा। उसके परिणामस्वरूप जो जीवन शैली उनके बच्चों ने अपनाया, उसमें आज बुजुर्गों का कोई स्थान नहीं रहा और अब उनका अन्तिम आश्रय वृद्धाश्रम बनता जा रहा है जो दुर्भाग्य की बात है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि युवा पीढ़ी और बुजुर्ग लोग एक-दूसरे को समझें, उनकी परिस्थितियों के बारे में सोच-समझकर, गहराई से विचार कर एक-दूसरे के साथ तालमेल बिठाने की कोशिश करें। यदि युवाओं की बुजुर्गो के प्रति उपेक्षा गलत है तो बुजुर्गो का जिदद् भी उतना ही गलत है। उन्हे भी परिस्थितियों को समझकर युवाओं के साथ तालमेल बिठाकर सहयोगात्मक और सकारात्मक सोच का परिचय देना होगा। आखिर आज के युवा उन बुजुर्गो के बच्चे ही तो हैं- इस सोच के साथ नयी परिस्थितियों में अपने बच्चों की रुचि, उनके पसंद-नापसंद का ख्याल रखना, बात-बात में टोका-टोकी कर विवाद पैदा करना या अपने ही बच्चों की निजी जिन्दगी में दखल देना अच्छा नहीं होता। युवाओं को भी यह समझना चाहिए कि हम अपने बुजुर्गों को सम्मान देकर, उनकी सेवा कर उनसे अच्छे संस्कार, आशीर्वाद और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। बुजुर्गो में चिड़चिड़ापन अधिक है, सामंजस्य का अभाव है, तो यह उनकी उम्र के कारण है। एक प्रसंग याद आता है। बड़े पैकेज पर एक मल्टीनेशनल कंपनी में उच्च पद पर कार्यरत् 35-40 साल के मैनेजर साहब सुबह की चाय लेने के बाद फाइलों में व्यस्त हैं। उसके बुजुर्ग पिता उसके लॉन में पेड़ पर बैठी चिड़ियाँ की ओर इशारा करके पूछते है कि वहाँ कौआ बैठा है न! एक झलक देखकर मैनेजर साहब हाँ में जवाब देकर अपने काम में व्यस्त हो जाते है। दूसरी बार उसके पिता वही सवाल करते हैं और साहब भी उसी प्रकार हाँ में जवाब देकर अपने काम में व्यस्त हो जाते हैं। परंतु जब तीसरी बार बुजुर्ग पिता यही सवाल करते हैं तो थोड़ा झिड़क कर साहब अपने पिता से कहते हैं - 'अब कितना बार बताना पड़ेगा?' बुजुर्ग तब भी नहीं माने और बोले बेटा एक बार और देखकर बताओ तो कि यह कौआ ही है न? अब साहब का गुस्सा काबू में नहीं रहा और अपने पिता को बेधड़क पूरी खड़ी-खोटी सुना बैठे - ''आपका आँख, कान खराब हो गया है क्या? दिमाग भी खराब हो गया है क्या? आखिर एक बात को कितनी बार पूछेंगे? मुझे और कोई काम है या नहीं। देखते नहीं मै कितना व्यस्त हूँ? आदि, आदि।'' पिता शांत भाव से बैठे रहे। जब घंटा-दो घंटा बाद उनका वह लड़का गाड़ी में बैठकर ऑफिस के लिए निकलने लगा तो बुजुर्ग पिता उसे एक पुरानी डायरी हाथ में देकर बोले- ''अगर किसी समय फुरसत मिले तो इस मोड़े गये पन्ने को पढ़ लेना बेटा।'' साहब ऑफिस पहुँकर वहाँ के काम में व्यस्त हो गए। लंच लेने के बाद उस डायरी का और पिता का ध्यान आया और ड्राईवर से बोले- 'जरा वो डायरी तो गाड़ी से लेते आना' । जब डायरी पलटा तो वह पृष्ट आज से पैंतीस साल पहले का था। उसपर लिखा था - आज मेरा इकलौता बेटा तीन साल का हो गया। मै उसे गोद में उठा कर सुबह-सवेरे अपने बगीचे में टहल रहा हूँ। पेड़ पर एक कौआ देखकर तोतली बोली में मेरा बेटा मुझसे पूछता है - ''वह क्या है?'' मैं बड़े प्यार से बोलता हूँ- ''वहाँ कौआ बैठा है।'' यही सवाल वह बार-बार दुहराता चला जाता है और मैं भी उसी प्यार से अपने जवाब को दुहराता चला जाता हूँ। जब उसने यह प्रश्न तीस-चालीस बार पूछ लिया और मैं हर बार जवाब देता चला गया तब मेरी पत्नी प्यार से पूछ बैठी कितनी बार एक ही प्रश्न करेगा? मैं बोला - ''बच्चा है न, अभी इसकी उम्र ही ऐसी है।'' इतना पढ़ते-पढ़ते साहब का दिल भर आया और आँखों से बरबस आँसू निकलने लगे और मन में सवालों का सैलाब उमड़ पड़ा- आखिर मैं क्यों नहीं समझ पाया कि इनकी तो उम्र ही ऐसी है। ऐसे अनेक प्रसंग आज मन को उद्वेलित और बेचैन करने वाले मिल जाएंगे। परंतु सबकी अपनी-अपनी मजबूरी है, लोग करें तो क्या करें? यही सवाल सुरसा की तरह मुँह बाए सबके सामने खड़ा है। जवाब थोड़ा मुश्किल अवश्य है, परंतु यह सवाल टालने लायक भी कतई नहीं है।

जरूरतमंद लोग चाहे वे हमारे रिश्तेदार हों, कोई मित्र या पड़ोसी उनकी सहायता करना हमारा धर्म है। आदमी होने के नाते एक अनजान व्यक्ति जो किसी मुसीबत में पड़ा हो उसकी सहायता भी अपेक्षित है। हमारे पूर्वजों

ने आदि काल में ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मंत्र दिया था। परन्तु भूमंडलीकरण के जमाने में, भौतिक विकास के चकाचौंध ने बहुत कुछ दिया तो बहुत कुछ हमसे छीन भी लिया। बड़े बुजुर्गों के प्रति मान-सम्मान एवं सेवा भावना में कमी आना भी उसी भूमंडलीकरण का परिणाम है। यह सही है कि बुजुर्गों की सेवा आसान काम नहीं है। उनकी सेवा करना और उनके साथ सामंजस्य बिठाना बहुत कठिन होता है। शारीरिक कमजोरी एवं स्वास्थ्य संबंधी तकलीफ के कारण उनका मन तुनुक मिजाज और चिरचिड़ा हो जाता है। फिर भी वे अपने मालिकाना हक को छोड़ना नहीं चाहते, अपना आदेश चलाने की लालसा पाले रहते हैं और उनके ही अनुसार सब चलें, इस जिद्द पर भी कायम रहते हैं। उन्हें छोटे बच्चे की तरह डाँटा फटकारा भी नहीं जा सकता और न ही किसी प्रकार से टॉफी आदि देकर ठगा जा सकता है। छोटे बच्चे की तरह उनको उठाना, बिठाना भी आसान नहीं होता। यदि अपने ही घर के सदस्यों की वह शिकायत करने लगते हैं तो बेइज्जती का डर भी सताने लगता है। इन सारी कठिनाईयों के बावजूद बुजुर्गों को उनके हाल पर छोड़ा नहीं जा सकता। जरूरत फिर भी इस बात की है कि हम अपने बुजुर्गों की देखभाल बड़े सम्मान, प्यार, स्नेह और धीरज के साथ करें। इसके लिए हम यहाँ कुछ उपाय सुझा रहे हैं।

- बुजुर्गों की सबसे बड़ी सेवा है, उनके पास बैठना और उनके पुराने अनुभवों को सुनकर सीख लेना और उस सीख के लिए उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना। इसलिए बुजुर्गों के पास बैठने और उनसे अनुभव साझा करने के लिए समय अवश्य निकालें।
- उनकी उम्र एवं उनके स्वास्थ्य के अनुकूल ही उनके भोजन, वस्त्र, रहन-सहन की जगह आदि का प्रबन्ध हो। उसमें डाक्टर के सुझाव का और बुजुर्गों की रुचि का भी ध्यान अवश्य रखा जाए।
- घर में कुछ ऐसे परिवर्तन किए जाएँ जो बुजुर्ग व्यक्ति को दुर्घटना से भी बचाए और उनके लिए खुद से छोटे-छोटे काम भी आसान कर दे। जैसे- उनके रहने के कमरे में अनावश्यक सामान, फर्नीचर आदि हटा दें, कोई बिजली का तार आदि अस्त-व्यस्त न रहने दें जिससे कोई परेशानी हो, उनके जरूरत की चीजों को उनकी आसान पहुँच में रखें, बाथरूम में या उसके रास्ते में जगह-जगह पर कोई पकड़ने लायक या सहारा देनेलायक वस्तु हो जिसे वे आवश्यकता पड़ने पर पकड़ सकें, कोई सामान ऐसा न हो जिससे टकराकर वे गिर जाएँ या चलने में बाधा उपस्थित करे, फर्श कभी भी भींगा या फिसलने लायक न छोड़ें, इलेक्ट्रिक स्विच या पानी का बर्तन उनके आसान पहुँच में हो तथा एक ऐसा अलार्म का बटन भी उनके आस-पास हो जो कि जरूरत पड़ने पर आसानी से बजाकर वे घर-परिवार के किसी सदस्य को बुला सकें।
- अगर घर के बुजुर्ग बाहर निकलना या घूमना चाहें तो उन्हे ऐसा करने दें, परंतु वे अकेले जाने लगें तो उनके साथ देखभाल हेतु कोई-न-कोई साथ निकलकर अवश्य जाएँ।
- सामाजिक कार्यों में उनकी साझेदारी को प्रोत्साहित करें, उन्हे अपने मित्रों से मिलने-जुलने और खुलकर बात करने का मौका दें। उनके मित्रों या हमउम्र साथियों को भी महत्व और सम्मान दें।
- लगातार बुजुर्गों के साथ रहना संभव नहीं है, ऐसे में थोड़ी-थोड़ी देर के लिए भी समय निकालकर बीच-बीच में उनसे मिलते रहें।
- उनकी दवा, इलाज आदि का ध्यान रखें, साथ ही अपनी आर्थिक स्थिति से भी उन्हे अवगत कराते रहें ताकि आपके खर्च की सीमाओं को भी वे जान-समझ सकें।
- उनसे आर्थिक मुद्दे को सम्मान के साथ साझा करें ताकि उनके धन-सम्पत्ति, बैंक बैलेन्स या बचत आदि की जानकारी आपको हो ताकि समय पर किसी मुसीबत के आने पर या अचानक कुछ हो जाने पर आपको पछताना नहीं पड़े। न्यायोचित ढंग से वसीयत आदि तैयार करवा लेना भी एक आवश्यक और उपयुक्त कदम होता है।
- समय रहते आवश्यक कागजातों की जानकारी भी उनसे इकट्ठा कर लें। यदि बुजुर्ग का विश्वास किसी खास रिश्तेदार या बच्चे पर है तो उसमें कोई खलल नहीं डालें और पीठ पीछे भी शिकायत करने की कोशिश न करें।

- उन्हें दवा किसी की देखरेख में ही लेने दें। आँख की कमजोरी या भूलवश उन्होंने कहीं गलत दवा ले ली तो खतरनाक स्थिति का सामना करना पड़ सकता है।
- उन्हे उपयुक्त समय पर अकेले या अपने किसी मित्र, पड़ोसी आदि के साथ नियमित व्यायाम, योगा आदि करने का मौका दें। यदि वे अपने नए मित्र बनाते हैं या किसी मित्र या पड़ोसी जो उनकी उम्र का है, के साथ हँसी-ठिठोली करते हैं तो इसे अच्छा माने। उनकी पसंद की पत्रिका या अखबार मुहैया कराएँ। टीवी देखना उन्हे अच्छा लगता हो तो मनपसन्द कार्यक्रम देखने दें।
- उनसे सामयिक विषयों एवं घटनाओं पर चर्चा करें, कभी-कभी उन्हें अपने एवं बच्चों के साथ घुमाने ले जाएँ और कभी अकेला छोड़ने की भूल न करें। यदि आपको कही बाहर जाना हो तो ऐसे में किसी रिश्तेदार या आदमी की भी व्यवस्था कर उनके पास देखभाल के लिए अवश्य रखें।
- जहाँ तक उनके लिए आसानी और खुशी से संभव हो, परिवार के काम में उनका सहयोग लें, उन्हे साझीदारी करने दें। साथ ही काम में उनकी सहभागिता की प्रशंसा करें।
- उन्हे उनकी पसंद के धार्मिक कर्मकाण्डों या प्रवचन आदि में शामिल होने दें। उनके साथ खाना खाने का अवसर निकालें और बातचीत करते समय आवाज इतनी ऊँची और स्पष्ट रखें कि बुजुर्ग आपकी बातों को आसानी से सुन-समझ सकें क्योंकि बुढ़ापे में आँख, कान सब कमजोर हो जाता है।

इस प्रकार के उपायों को अपनाकर बुजुर्गों की देखभाल की जा सकती है।

नयी सोच अपनाएँ, नवीन व्यवस्था बनाएँ:

यहाँ मुम्बई में घटी एक हृदय विदारक घटना का जिक्र किया जा रहा है ताकि बदली हुई परिस्थितियों में बुजुर्गों की देखभाल हेतु नवीन दृष्टिकोण को अपनाया जाए और वैकल्पिक व्यवस्था को सराहा जाए । मुम्बई के एक पॉश इलाके में आशा साहनी नामक बुजुर्ग महिला एक बड़े से महँगे फ्लैट में अकेली रहती थी। पति की मौत वर्ष 2013 में हो गयी थी और उसका इकलौता बेटा सॉफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में अमेरिका में लम्बे समय से बड़े पैकेज पर काम करता रहा। माता-पिता की सम्पत्ति का अकेला वारिस होने के कारण वह यदा-कदा फोन पर बात कर लेता था या कभी-कभार मुम्बई आ भी जाता था। वर्ष 2016 में जब वह मुम्बई वाले फ्लैट पर पहुँचा और दरवाजा खटखटाया तो अन्दर से बन्द दरवाजा कोई खोलने नहीं आया। अन्त में पुलिस की मौजूदगी में दरवाजा तोड़कर खोला गया तो सभी अवाक् रह गये। बूढ़ी महिला का कंकाल बड़ी विचित्र स्थिति में उसके ड्राइंग रूम में मिला। उसकी मौत कई हफ्ते या महीने पहले हो चुकी थी। उसके बेटे समेत सभी अवाक् और दु:खी हो गए, मगर अब तो काफी समय बीत चुका था। इस प्रसंग में बेटे को कोसने भर से या उस इंजीनियर को 'कुपुत्र' या 'कलियुगी पुत्र' की संज्ञा दे देने भर से समस्या के सभी पहलुओं को नहीं समझा जा सकता है। दिल को झकझोर कर रख देनेवाली इस हृदय विदारक घटना का दूसरा पहलू समझना और उसपर विमर्श करना भी यहाँ आवश्यक है।

आशा साहनी नाम की अकेली रहनेवाली यह महिला कोई गरीब महिला नहीं थी। उसकी छ: करोड़ की सम्पत्ति मुम्बई में थी। बड़ा सा मकान था। उसका बेटा अमेरिका में रहकर खूब पैसे कमा रहा था और ऐशा-आराम की जिन्दगी जी रहा था। दूसरी ओर मुम्बई में छोटी-छोटी नौकरियों की तलाश में आये हजारों गरीब युवा प्रतिदिन रात के समय अपनी जान को खतरा में डालकर सड़क किनारे सोने को विवश होते हैं। उन्हे कोई कमरा तो क्या अपने बरामदे में भी रात को सो जाने मात्र के लिए जगह नहीं देता है। हमारी परम्परागत सोच ने हमारे सारे धन-सम्पत्ति को अपने बेटे या बेटी के लिए ही रिजर्व करके रखा है, भले ही वह बेटा-बेटी कभी पूछता भी नही हो। इस सोच से बाहर निकलने की आवश्यकता है। यदि बुजुर्गों की सेवा को युवाओं के रोजगार से जोड़कर एक वैकल्पिक व्यवस्था खड़ी की जाए तो समस्या का समाधान निकल सकता है। ऐसे लोगों की तादाद अब दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है और बढ़ती ही जाएगी, जिनकी सम्पत्ति करोड़ों में है, उनके बेटे-बेटियाँ ग्लोबल होकर दुनिया के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में जाकर अच्छा पैसा कमा रहे हैं और अपने माता-पिता के लिए उनके पास कोई

समय नहीं है। दूसरी ओर हजारों-लाखों की संख्या में ऐसे गरीब, बेरोजगार युवा भी हैं जो थोड़ी सी आर्थिक सहायता अथवा कम पगार पर भी कोई नौकरी पाने लिए लालायित हैं। यदि इनका एक समन्वय और सामंजस्य स्थापित करने वाली वैकल्पिक व्यवस्था सामने आये तो समस्या का समाधान निकल सकता है।

वृद्धाश्रम को भी एक नवीन सकारात्मक और सृजनात्मक दृष्टिकोण लेकर स्थापित किया जाए तो वहाँ बुजुर्गों को सुख-सुविधा के साथ-साथ मर्यादित और सम्मानित जीवन जीने का अवसर मिल सकता है। यह सब हम इसलिए नहीं कह रहे कि बुजुर्गों को उपेक्षित कर उन्हे किसी तरह से अपने से दूर कर दिया जाए और वृद्धाश्रम में धकेल आया जाए; बल्कि इसलिए कह रहे हैं ताकि बदली हुई परिस्थितियों की सच्चाई को स्वीकारा जाए और एक नई व्यवस्था खड़ी की जाए। हमारे देश में और पूरी दुनिया में बुजुर्गों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है और पुराना सामाजिक ताना-बाना टूट चुका है। संयुक्त परिवार का दौर गया और अब एकल परिवारों में माँ-बाप की देखभाल में कठिनाई आ रही है। इस कड़वी सच्चाई को स्वीकार कर बुजुर्गों की देखभाल के लिए नयी पहल नहीं की गई और नवीन व्यवस्था का सृजन नहीं हुआ तो इस चिंताजनक समस्या का समाधान निकल पाना मुश्किल होगा।

4.7 सारांश (Summary)

आधुनिक युग में परिवार में बिखराव आया है और उस बिखराव के साथ ही पारिवारिक मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। परिवार के मामले में पश्चिमी देशों के अंधानुकरण ने उसकी परिभाषा ''मैं, मेरी पत्नी और अठारह साल तक के बच्चे'' तक सीमित कर दिया है। पारिवारिक विघटन का परिणाम है कि बच्चों को प्रेम, सहयोग और सम्मान की शिक्षा नहीं मिल रही है। पारिवारिक विघटन के कारण आज युवा परेशान हैं, उनके बच्चे का लालन-पालन सही से नहीं हो पा रहा है, महिलाएँ अनेक प्रकार से भेद-भाव और शोषण का शिकार हो रही हैं और वृद्धावस्था बोझ सा लगने लगा है। परिवार की संरचना में जो बदलाव आये हैं उसने अनेक विकृतियों को हमारे समक्ष चुनौती के रूप में खड़ा किया है। परिवार व्यवस्था जो कि आदिकाल से ही सभी उम्र के, सभी व्यक्ति की, सभी आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम बनती आयी थी, वह आज कलह, विग्रह, असंतोष और आशंका का केन्द्र बन गयी है। नैतिक मूल्यों और पारिवारिक मूल्यों में आये गिरावट के कारण रिश्तों की सारी मर्यादाएँ टूट रही हैं। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि परिवार जैसी संस्था का मानव जीवन में जो महत्व है, उसे पुनः स्थापित किया जाए। यदि परिवार का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा तो फिर बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री या युवा सुकून का जीवन नही जी पाएँगे । परिवार वह संस्था है जहाँ मानव जीवन की शुरूआत होती है, उसके जीवन को आकार मिलता है, इसलिए परिवार को ही उसके अंतिम साँस तक का सहारा होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि परिवार के सदस्य परिवार के महत्व एवं उसकी उपयोगिता को समझें। परिवार सिर्फ भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन ही नहीं है और न ही सिर्फ शारीरिक रूप से साथ रहे लोगों का समूह। परिवार तो सहयोगी व्यवहार एवं प्रेम भावना का सम्मिलन रुप है। अतः परिवार के उस स्वरूप का संरक्षण आवश्यक है जिसमें सबका हित सुरक्षित हो और सभी भावनात्मक रूप से एक-दूसरे से जुड़कर सुख-दुख को साझा करें।

4.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. पारिवारिक मान्यताएँ क्या हैं? बालक के भावी जीवन के विकास में इनका क्या महत्व है?
   What are family values? What is its importance in the development of future life of a child?
2. परिवार के मुख्य घटक कौन-कौन से हैं? परिवार की संरचना का वर्णन भी करें।
   What are the important components of a family? Also describe the structure of family.
3. परिवार के सदस्यों की नाराजगी का निराकरण कैसे किया जा सकता है? परिवार के सदस्यों के उत्तरदायित्वों का वर्णन करें।
   How can the anger of family members be neutralized? Describe the responsibilities of family members?

4. पारिवारिक जीवन के खतरे कौन-कौन से हैं? परिवार एवं समाज में स्त्रियों की स्थिति की विवेचना करें।

   What are the threats of family life? Discuss the status of women in family and society.

5. जरूरतमंद और बुजुर्गों की देखभाल कितना महत्वपूर्ण है? बुजुर्ग लोगों के साथ अपने विचार और सरोकार साझा करने के मामले में आपके क्या सुझाव हैं?

   How is caring for needy and elderly significant? What are your suggestions regarding sharing ideas and concerns with elderly people?

4.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Smith II, George P. (1998) : Family Values and the New Society : Dilemmas of the 21st Century, Praeger, Westport, CT.
2. सिंह, **डा० जे०पी०** (2017) **:** समाजशास्त्र:अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, तृतीय संस्करण, PHI Learning Private Ltd., Delhi.
3. Murdock, George P. (1949) : Social Structure, Macmillan, New York.
4. Giddens, Anthony (1993) : Sociology, Cambridge : Polity Press, UK.

इकाई:5

मूल्य अवबोध
(Values Realization)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

5.0 उद्देश्य (Objective)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

5.2 मूल्य अवबोध का अर्थ (Meaning of Value Realization)

5.3 मूल्य संघर्ष एवं उनका समाधान (Value Conflict and their Resolution)

5.4 व्यक्तिगत एवं आजीवन चलने वाली प्रक्रिया के रूप में मूल्यों का विकास (Development of Values as a Personal and Life Long Process)

5.6 सारांश (Summary)

5.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

5.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

5.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगणः

- छात्र मूल्य अवबोध एवं नैतिक विकास का अर्थ समझ सकेंगे।
- छात्र मूल्य अवबोध के विभिन्न स्तरों एव अवस्थाओं को समझ सकेंगे।
- छात्र मूल्य संघर्ष एवं उनके समाधान की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- छात्र मूल्य को आजीवन सतत् रुप से चलने वाली प्रक्रिया के रुप में समझ सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

मूल्य अवबोध हमारे जीवन के अभिन्न पहलू हैं। वस्तुतः हमारे नैतिक जीवन का विकास विभिन्न प्रकार के मानवीय मूल्यों के अवबोधन के द्वारा ही होता है। मूल्यों का अवबोधन सैद्धान्तिक ज्ञान से नहीं होता बल्कि मूल्यगत विकल्पों की स्थिति में कार्य करने वाली हमारे नैतिक तर्कणा के द्वारा ही होता है। नैतिक निर्णयों के पीछे कार्य करने वाली विश्लेषणात्मक क्षमता या तर्क–वितर्क के द्वारा ही हम क्रमशः निम्नतर से उच्चतर मूल्यों की ओर प्रयाण करते हैं। हमारे मूल्यगत स्थिति के विभिन्न स्तर होते हैं जो यह दिखाते हैं कि हम मूल्य अवबोध या नैतिक विकास की किस अवस्था पर खड़े हैं। मूल्य अवबोध और उसकी प्रक्रियाओं की समझ होने से हम मूल्यगत संघर्ष की स्थिति में उचित निर्णय ले सकने की क्षमता से युक्त हो जाते हैं। यह पाठ मूल्य एवं उसके पहलुओं का विस्तृत अनुशीलन करता है।

5.2 मूल्य अवबोध का अर्थ (Meaning of Value Realization)

रोड पर कोई दुर्घटना हो गई हो तो उसे अस्पताल ले जाना चाहिए या पुलिस के चक्कर से बचने के लिए उसकी हालत पर छोडत्र देना चाहिए? ट्रेन में सीट नहीं मिलने पर टी०टी० के कुछ देकर सीट का जुगाड़ करना चाहिए या नहीं? परीक्षा में नकल करनी चाहिए या नहीं? अपना कर बचाने के लिए अपनी आय छुपाना चाहिए या नहीं? अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए झूठे प्रचार का सहारा लेना चाहिए या नहीं?..... इत्यादि अनेकों प्रश्न हैं जिनका सामना हम अपने दैनिक जीवन में हर कदम पर करते हैं। ये जटिल प्रश्न होते हैं जो अपने साथ कई पहलुओं को समेटे होते हैं यथा– परिसिथिति, कानून और हमारा अपना निजी नैतिक दृष्टिकोण इत्यादि। वह सही हैं या गलत, हमें उसक करना चाहिए या नहीं, इस बात का निर्णय किन्हीं एक आयाम से करना बेहत कठिन है। परंतु अपने मूल में ये सभी प्रश्न हमारे मूल्यागत जीवन से तो जुड़े होते ही हैं।

उपरोक्त प्रकार के प्रश्नों का उत्तरन हमारे नैतिक स्थिति पर निर्भर करता है। हमारा नैतिक जीवन मूल्यों के अवबोध या उन्हें आत्मसात करने पर निर्भर करता है। मूल्यों के सैद्धांतिक ज्ञान और बोध में फर्क है।

सैद्धान्तिक ज्ञान ऊपरी होता है और जबतक वह अवबोध के रुप में रूपांतरित नहीं होता वह हमारे उचारण का हिस्सा नहीं बन पाता। मूल्यों का अवबोध व्यक्ति के चिंतन–मनन या तर्कणा की क्षमता पर आधारित होता है। किसी परिस्थिति विशेष में क्या सही है और क्या गलत इसका निर्णय लिए जाने में निहित तर्कणा या चिंतन मनन की क्षमता में परिवर्तन होने से मूल्यों का अवबोध हो पाता है। इस क्षमता में परिवर्तन के द्वारा ही नए मूल्य हमारे जीवन में जुड़ते हैं और हमारा नैतिक विकास हो पाता है।

व्यस्कों की भांति बच्चे भी ऐसे प्रश्नों के समान रूप से रूबरू होते हैं। वे भी नैतिक निर्णय लिया करते हैं। बच्चों के नैतिक निर्णय के पीछे भी उनकी अपनी तर्कणा या चिंतन–मनन होती है। क्या बच्चों की तर्कणा की क्षमता भी व्यस्कों की भांति ही होती है? क्या बच्चों की इस क्षमता में परिवर्तन करके उनके नैतिक विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है? इस प्रकार के प्रश्न ही मूल्य अवबोध के केन्द्रीय प्रश्न हैं।

मूल्य अवबोध के स्तर (Levels of Values Realization)

मूल्य अवबोध एवं नैतिक विकास से जुड़े हुए अनेकों मत हैं। परन्तु इन सब में **लौरेंस कोहेलबर्ग** का मूल्य अवबोध के स्तरों को निरूपित करने वाला सिद्धान्त सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रचतिल है। **कोहेलबर्ग** ने अपने इस सिद्धान्त का विकास स्विस मनोवैज्ञानिक **जीन पीयगेट** से प्रभावित हो गया था। **कोहेलगर्ब** ने बच्चों एवं व्यवस्कों का विस्तृत अध्ययन किया और पाया कि मनुष्य नैतिक तर्कणा एवं मूल्य अवबोध के तीन विशिष्ट स्तरों से गुजरता है और प्रत्येक स्तर दो अवस्थाओं में बांटा होता है। इस प्रकार के मूल्य अवबोध की सह अवस्थाओं को समाने रखते हैं।

अपने अध्ययन के लिए **कोहेलबर्ग** नैनिक द्वंद्व से जुड़ी कहानियाँ का सहारा लेते थे। ऐसी ही एक प्रसिद्ध कहानी "हैंज का द्वन्द" है। **हैंज** की पत्नी को कैंसर हो गया था और डॉक्टरों ने जिस दवाई को लाने के लिए कहा था वह काफी मंहगा थी। **हैंज** काफी दुविधा में था क्योंकि उसके पास उतने पैसे नहीं थे। उसने दवा विक्रेता से बहुत संवाद किया, बाद में पैसे चुकाने की बात की इत्यादि। परंतु बात नहीं बन पाई। अंत में **हैंज** उस दवा दुकान में तोड़फोड़ कर दवा चुरा लेता है। **कोहेलबर्ग** अपने पास पहुँचने वाले लोगों से द्वंद्व वाली ऐसी ही किसी परिस्थिति की कल्पना करने के लिए कहता थे एवं उनका निर्णय और उस निर्णय के पीछे निहित उनकी तर्कणा या सोच को जानने का प्रयास करते थे। **कोहेलबर्ग** निर्णय को उतना महत्व नहीं देते थे बल्कि उस निर्णय तक पहुँचने के पीछे व्यक्ति की सोच या उसकी तर्कप्रणाली क्या है उसे ही महत्वपूर्ण मानते थे। **कोहेलबर्ग** उन नैतिक तर्कों का विश्लेषण करते थे और यह सुनिश्चित करते थे कि उसे मूल्य अवबोध के स्तरों का पता हम नैतिक लिए जाने के पीछे कार्य करने वाली नैनिक तर्कणा के द्वारा ही लगा सकते हैं। अब हम उनके द्वारा प्रतिपादित मूल्यबोध के विभिन्न अवस्थाओं की बात करेंगे।

मूल्य अवबोध के स्तर (Levels of Value Realization)

स्तर 1– प्राक्–पारंपरिक (Level 1 - Pre Conventional)	
अवस्था 1 (Stage1)	आज्ञाकारिता एवं दंड उन्मुखता (कैसे मैं दंड से बच सकता हूँ?) Obedience and punishment orientation (How can I avoid punishement?)
अवस्था 2 (Stage 2)	स्व–हित उन्मुखता (इसमें मेरे लिए क्या है?) (फायदे के लिए भुगतान) Self-interest orientation *(What's in it for me?) (Paying for a benefit)*
स्तर 2 – पारंपरिक (Level 1 - Conventional)	
अवस्था 3 (Stage 3)	अंतरवैयक्तिक मेल एवं अनुपालन (सामाजिक प्रतिमान) (अच्छा लड़का / लड़की मनोवृत्ति) Interpersonal accord and conformity *(Social norms) (The good boy/girl attitude)*
अवस्था 4 (Stage 4)	सत्ता एवं सामाजिक व्यवस्था निर्वहन उन्मुखता (कानून व्यवस्था नैतिकता) Authority and social-order maintaining orientation *(Law and order morality)*
स्तर 3 – उत्तर–पारंपरिक (Level 3 - Post-Conventional)	
अवस्था 5 (Stage 5)	सामाजिक समझौता उन्मुखता (Social contract orientation)
अवस्था 6 (Stage 6)	सार्वभौतिक नैतिक सिद्धान्त (सैद्धान्तिक विवेक) Universal ethical principles (*Pincipled conscience)*

प्राक–पारंपरिक स्तर (Pre-Conventional Level)

नैतिक तर्कणा एवं मूल्य अवबोध का प्राक–पारंपरिक स्तर मुख्यतः बच्चों में दिखता है। हालांकि कुछ व्यवस्कों में भी इसे पाया जाता है। इस स्तर के दोनों अवस्थाओं में नैतिकता उसके साक्षात परिणाम से निर्धारित होता है और पूर्णतः आत्मकेंद्रित मनोवृत्ति से युक्त होता है। इस स्तर में बच्चा सही और गलत के संदर्भ में समाज के रीति–रिवाजों को आत्मसात नहीं किया होता है। उसके किसी क्रिया या बाह्य परिणाम क्या होगा इस पर उसका ध्यान होता है।

प्राक–पारंपरिक स्तर की प्रथम अवथा मुख्यतः दंड एवं आज्ञापालन से जुड़ा है। किसी भी क्रिया को इसलिए गलत माना जाता है क्योंकि वैसा करने से दंड मिलेगा। बच्चा यह सोचता है कि पिछले बार मैने ऐसा किया था तो दंड मिला था इसलिए मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। जिस काम के लिए दंड जितना कड़ा होता है बच्चों उसे उतना ही बुरा समझता है। जैसे– किसी बच्चे को उसका दोस्त स्कूल ने आने के लिए प्रेरित करता है लेकिन वह उसकी बात इसलिए नहीं मानता क्योंकि वह जानता है कि स्कूल न जाने पर उसे माता–पिता से दंडित होना पड़ेगा। दण्ड के भय से उसने यह जान लिया है कि स्कूल न जाना गलता है।

प्राक–पारंपरिक स्तर की दूसरी अवस्था स्व–हित या अपने फायदे से प्रेरित हो किसी बात को सही मानने से जुड़ी है। बच्चा अपने हित या फायदे के हिसास से ही या गलत का निर्णय करता है। वह यह नहीं देखता कि इससे दूसरे को या समाज को नुकसान होगा या नहीं। यह अपनी छवि या दूसरों से संबंध की भी चिंता नहीं करता। दूसरे के प्रति सरोकार दिखता भी है तो वह सम्मान या निष्ठा की आंतरिक भावना नहीं होती। जैसे कोई माता–पिता अपने बच्चे को कोई काम देते हैं तो वह इसलिए मना कर देता है कि उसमें उकसा क्या फायदा? जब माता–पिता कुछ प्रलोभन देते हैं तो वही बच्चे उस कार्य को सही समझ करने लगता है।

पारंपरिक स्तर (Conventional Level)

नैतिक तर्कणा एवं मूल्य अवबोध का पारंपरिक स्तर मुख्यतः किशारों से जुड़ा होता है। इस स्तर पर सही और गलत के निर्णय हेतु किया जाने वाले नैनिक तर्कणा समाज के मत और अपेक्षाओं से प्रभावित होता है। कोई भी किशोर इस तथ्य को जानते हुए भी कि उसके आज्ञा पालन करने या न करने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा, नियमों एवं सामाजिक प्रतिमानों का पालन करता है। भले ही वे नियम या प्रतिमान कड़े हों या उनकी वैज्ञानिक वैद्यता न हो, फिर भी वह उस पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाता।

अवस्था तीन से व्यक्ति आत्मकेंद्रिकता से समाजोन्मुखता की ओर बढ़ जाता है। व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की स्वीकृति–अस्वीकृति को ध्यान में रखने लगता है क्योंकि वह समाज के मत को अभिव्यक्त करने वाला होता है। किशोर समाज की अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए अच्छा लड़का या अच्छा लड़की बनने का प्रयास करते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति अपने सम्बन्धों को ध्यान में रख, उनका मूल्यांकन कर, नैतिक निर्णय लेता है। वह खुद को पसंद किए जाते देखना चाहता है। इसलिए सम्मान देना, आभार व्यक्त करना, अनुगृहीत होना जैसे गुण स्वाभाविक रूप में उभर आते हैं।

अवस्था में चार में व्यक्ति को समझ में आ जाता है कि सामाजिक नियम–कायदों, परम्पराओं आदि का पालन महत्वपूर्ण है क्योंकि वे समाज के सुचारु रुप से चलने के लिए जरुरी होते हैं। इसलिए इस अवस्था में चलने वाला नैतिक तर्क अवस्था तीन की तरह अन्य व्यक्तियों की स्वीकृति की अपेक्षा नहीं रखता। व्यक्ति यह समझ जाता है कि यदि एक व्यक्ति नियम–कायदे को तोड़ेगा तो सभी तोड़ने लगेंगे और समाज का चलना मुश्किल हो जाएगा। समाज के ज्यादातर लोग सामान्य रुप से इसी अवस्था चार में होते हैं, हालांकि नैतिकता का स्तर अभी भी बाह्य दबावों वाला ही होता है।

उत्तर–पारंपरिक स्तर (Post-Conventional Level)

उत्तर–पारंपरिक स्तर एक सिद्धांतवादी स्तर है। इस स्तर में व्यक्ति के अंदर धीरे–धीरे यह बोध गहरा जाता है कि व्यक्ति की समाज से अलग सत्ता है और उसका मत समाज के मत से अधिक महत्वपूर्ण एवं वरणीय है। व्यक्ति समाज के नियमों का उल्लंघन कर सकता है यदि वे उसके सिद्धांतों के साथ संगत नहीं है। इस स्तर पर व्यक्ति अपने नैतिक सिद्धांतों के आलोक में जीवन जीता है और उसके सिद्धांत जीवन, स्वतन्त्रता, न्याय जैसे बुनियादी मानव अधिकारों से सम्बन्धित हो सकते हैं। वह समाज के नियमों को उपयोग मानता है परंतु उन्हें

एक परिवर्तनशील संरचना के रुप से मानता है, न कि रिढ़ एवं स्थिर। वह समझता है कि नियम सामान्य व्यवस्था को बनाए रखने वाले होते हैं परंतु उन्हें निरपेक्ष आदेश कि तरह नहीं लिया जा सकता जिनपर संदेह या प्रश्न नहीं खड़े किए जा सकते हैं। कुछ विद्धवान यह मत रखते हैं कि ज्यादातर लोग अमूर्त नैतिक तर्कणा के इस स्तर तक कभी कभी पहुँच ही नहीं पाते।

अवस्था 5 सामाजिक समझौता या अनुबंध की ओर उन्मुखता है। इस अवस्था में व्यक्ति दुनिया को मत, अधिकार एवं मूल्यों की विविधता से युक्त पाता है। विभिन्न पक्षों के प्रति आपसी सम्मान और सद्भाव होना चाहिए क्योंकि हर मत व्यक्ति या समूह की अपनी दृष्टि से विशिष्ट होता है। इस अवस्था में नियम–कानून को सामाजिक अनुबंध के रूप में देखा जाता है कि हठधर्मिता के रुप में। वैसे नियम–कायदे बदले जाने चाहिए जो समाज के सामान्य कल्याण को प्रोत्साहित नहीं करते। समाज के अधिकतम लोगों के हित को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसे जरूरी समझौतों और बहुमत के आधार पर निर्णय द्वारा संभव किया जा सकता है। इसी अवस्था की तर्कप्रणाली पर लोकतान्त्रिक सरकारें आधारित होती हैं।

अवस्था 6 सार्वभौमिक नैतिक नियमों की ओर उन्मुखता है। इसमे नैतिक वैसे अमूर्त तर्कणा अमूर्त तर्कणा पर आधारित होते हैं जो सार्वभौमिक नैतिक नियमों या सिद्धान्तों से अभिप्रेरित हों। कोई भी नियम वहीं तक वैध हैं जहांतक कि वे न्याय इत्यादि के सार्वभौतिक सिद्धान्तों पर आधारित हों। यह कॉंट के "कर्तव्य के लिए कर्तव्य" जैसी अवस्था है। यहाँ नैतिक कर्म साधन न होकर अपने आप से साध्य रूप है। व्यक्ति इसलिए कोई कर्म करता है क्योंकि वह सही होता है न कि इसलिए कि वैसा करने से वह दंड से बचेगा, या वह उसके फायदे में होगा, या सामाजिक अपेक्षाओं कि पूर्ती करेगा, या सामाजिक अनुबंध की पूर्ति करेगा, जैसा कि वह पूर्व कि अवस्थाओं में करता है। मूल्य अवबोध की यह सर्वोच्च अवस्था है और **कोहेलबर्ग** के अनुसार इस अवस्था में पाये जाने वाले व्यक्ति न के बराबर ही होते हैं।

5.3 मूल्य संघर्ष एवं उनका समाधान (Value Conflict and Their Resolution)

व्यक्ति जब किसी परिस्थिति में एक ही साथ दो परस्पर विरोधी मूल्यों के सम्मुख खड़ा होता है और यह तय नहीं कर पाता कि क्या निर्णय करे तो यह मूल्य संघर्ष की स्थिति होती है। **कोहेलबर्ग** द्वारा दिये गए प्रसिद्ध उदाहरण हैंज के द्वंद्व में इसे स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। उपरोक्त वर्णित हैंज के द्वंद्व में हमने देखा कि हैंज एक ही साथ दो मूल्यों से संघर्ष कर रहा था। चोरी न करने का मूल्य और किसी की प्राणरक्षा (कैंसर पीड़ित पत्नी का) का मूल्य। हैंज अपने द्वदंव् से उबरने के लिए नैतिक तर्कणा से युक्त मानसिक संघर्ष से गुजरता है और अंत में यह तय कर पाता है कि किसी की प्राणरक्षा का मूल्य चोरी न करने के मूल्य से अधिक व्यापक है और अपनी पत्नी की प्राणरक्षा हेतु यदि उसे चोरी करना चाहिए तो यह गलत नहीं होगा।

मूल्य संघर्ष को समझने के लिए हमें कुद अन्य उदाहरण भी देखने चाहिए। एक उदाहरण **प्लोटो** के रिपब्लिक से है जहां सेफलस न्याय को परिभाषित करते हुए कहता है कि न्याय सत्य बोलना एवं लिया हुआ कर्ज वापस करना है। सुकरात उसकी बात का खंडन करता हुआ कहता है कि यदि हमने किसी से कोई हथियार कर्ज पर लिया है और व्यक्ति अब स्वस्थ मानसिक स्थिति में नहीं है तो क्या उसे उसका हथियार लौटाना चाहिए? यदि हम उस स्थिति में हथियार लौटाते हैं तो वह किसी के लिए प्राणसंकट पैदा कर सकता है। यहाँ भी कर्ज लौटाने और किसी को प्राणसंकट में न डालने के मूल्यों के बीच संघर्ष कि स्थिति है। एक उदाहरण हम सात्र से लेते हैं। सात्र ने एक विद्यार्थी का उल्लेख किया है जिसका भाई जर्मन सेना द्वारा मार दिया गया था। वह विद्यार्थी बुरी शक्ति के रूप में प्रसिद्ध जर्मन सेना से युद्ध कर अपने देश की सेवा करना चाहता था। परंतु उसके साथ उसकी बूढ़ी माँ रहती थी जिसका एकमात्र वह सहारा था। वह द्वंद्व की स्थिति में था कि देश के लिए युद्ध करने जाए या बूढ़ी माँ की सेवा में रहे। यह एक मूल्य संघर्ष की स्थिति थी।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि जीवन में प्रायः ऐसी स्थितियाँ आती हैं जबकि हम परस्पर संघर्षपूर्ण नैतिक स्थिति का सामना करते हैं। हमे दो बिलकुल सही मूल्यगत स्थितियों में से एक को नकारना पड़ता है। यह एक आसान कार्य नहीं होता। प्रश्न है कि हम अपने इस नैतिक संघर्ष का समाधान कैसे करते हैं? ऊपर हमने **कोहेलबर्ग** के मूल्य अवबोध की अवस्थाओं का वर्ण किया है। इसके अनुसार मूल्यगम संघर्ष की स्थिति में हम क्या निर्णय लेंगे यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम नैतिक विकास की किस अवस्था में हैं। नैतिक

संघर्ष के समाधान के लिए कोई पूर्वनिर्धारित सैद्धान्तिक स्थिति नहीं होती। इसे हर व्यक्ति को वैसी विशिष्ट स्थिति में पड़ने पर खुद ही तय करना पड़ता है। इसके लिए नैतिक सिद्धान्त उतने महत्वपूर्ण नहीं होते जितना कि वह नैतिक तर्कणा जो मूल्यगत विकास के पृष्ठभूमि में कार्य करते हैं। मूल्य संघर्ष की स्थिति में पड़ने पर व्यक्ति एक प्रकार के नैतिक तर्क–वितर्क की स्थिति में स्थिति से गुजरता है। वह अपने विश्लेषणात्मक दक्षता से ही यह तय कर पाता है कि उपस्थित हुई उस विशिष्ट स्थिति में उसके लिए क्या निर्णय करना उचित होगा। इसलिए मूल्य संघर्ष के समाधान के लिए नैतिक सिद्धान्त कि अपेक्षा नैतिक तर्कप्रणाली ही अधिक उपयोगी है। हमे इन स्थितियों में अपने विश्लेषणात्मक क्षमता पर ही निर्भर होना चाहिए।

5.4 व्यक्तिगत एवं आजीवन चलने वाली प्रक्रिया के रूप में मूल्यों का विकास (Development of Values as a Personal and Life Long Process)

मूल्य शब्द सुनते ही हमारे मस्तिष्क में आर्थिक मूल्य कौंधता है। कोई भी वस्तु जो हमारी किसी इच्छा या जरूरत को पूरी करने वाली हो उसका एक मूल्य होता है ओर हम उसे एक निशिचित मूल्य देकर खरीदते है। मूल्य यह सबसे शुरुआती समझ है। इसके अनुसार जिस चीज में हमारे इच्छा की पूर्ति करने की क्षमता होती है वही अच्छा है और उसी का मूल्य होता है। इस दृष्टि से भोजन, कपड़ा और मकान हमारी इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हैं इसलिए उनका मूल्य है। परंतु जैसे–जैसे हमारी समझ बढ़ती है हमे यह समझ में आता है कि ये इसलिए मूल्यावान हैं क्योंकि वे हमारे जीवन का संरक्षण करते हैं और उसे आगे बढ़ाते हैं। अब हम यह समझने लगते हैं कि केवल इच्छा कि पूर्ति में ही मूल्य निहित मानना बेहद संकुचित है। बल्कि मूल्य तो वे हैं जो हमारे जीवन का संरक्षण करते हैं और उसे आगे बढ़ाते हैं या उसका विकास करते हैं। परंतु जैसे–जैसे हम परिपक्व होते हैं हमे मूल्य की यह समझ भी संकुचित लगने लगती है। हमे यह समझ में आता है कि ये सीाी सिर्फ जीवित रहने का संघर्ष है। मनुष्य का जीवन अन्य जीवों की तरह महज जीवित रहने की होड़ नहीं है। बल्कि मनुष्य के पास बुद्धि–विवेक की शक्ति है जो सिर्फ उसी के लिए विशिष्ट है। इस रूप में उसका जीवन अधिक जटिल और व्यापक आयामों वाला है। वह केवल जीवन को बनाए रखने और उसे लोग बढ़ाते रहने से संतुष्ट नहीं होने वाला। मनुष्य केवल शरीर ही नहीं बल्कि बुद्धि और आत्म भी है। इसलिए सही मायने में मूल्य वही होगा जो उसके आंतरिक विकास को सुनिश्चित करे और आत्म–बोध और आत्म–तृप्ति की ओर ले जाए।

वस्तुतः मूल्य दो प्रकार के होते हैंः– साधन या मूल्य एवं साध्य या आंतरिक मूल्य। साधन मूल्य वे हैं जो अपने आप में मूल्यवान नहीं होते बल्कि इसलिए मूल्यवान होते हैं क्योंकि वे हमारी किसी इच्छा या जरूरत को पूरी करने के साधन हैं। जैसे अच्छा भोजन, धन, अच्छे कपड़े आदि अपने आप में मूल्यवान नहीं होते बल्कि इसलिए मूल्यवान होते हैं कि हमे सुख देते हैं। जबकि साध्य या आंतरिक मूल्य वे हैं जो अपने आप में मूल्यवान होते हैं। जैसे– सत्य, सौन्दर्य, शांति इत्यादि। बाह्य मूल्यों का अपना महत्व है। परंतु मनुष्य के संदर्भ में यह सिर्फ एक पहलू है। मनुष्य का बाह्य के अतिरिक्त एक आंतरिक जीवन होता है। जबतक उकसा विकास बाह्य मूल्यों से आंतरिक मूल्यों की ओर नहीं होता उसे संतुलित, संतोषप्रद एवं शांत जीवन नहीं प्राप्त होता। इसलिए मनुष्य का जीवन सतत रूप से मूल्यों के विकास में निहित है और जैसे–जैसे वह मूल्यों के स्थूल अवबोधन से उनके सूक्ष्मतर अवबोधन की ओर मुखातिब होता है, साधन मूल्यों से साध्य मूल्यों की ओर बढ़ता है, वह अधिकाधिक सुसंगत एवं सुंदर जीवन को प्राप्त करता है। यह मूल्यगत विकास जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है।

डब्लू० एम० अर्बन ने अपनी पुस्तक "द फिलॉसफि ऑफ नित्शजे : द जेनिओलाजी ऑफ मोरल्स" में व्यक्तिगत एवं आजीवन चलने वाली प्रक्रिया के रूप में मूल्यों के विकास को निम्नलिखित रूप में व्याख्यायित किया हैः–

1.	शारीरिक मूल्य	5.	चरित्र मूल्य
2.	आर्थिक मूल्य	6.	सौन्दर्य मूल्य
3.	मनोरंजन मूल्य	7.	बौद्धिक मूल्य
4.	जुड़ाव के मूल्य	8.	धार्मिक मूल्य

अर्बन के अनुसार ये मूल्य उन सभी मूल्यों को समाहित करते हैं जो मनुष्य द्वारा सार्वभौतिक रूप से स्वीकार किए जाते हैं। शारीरिक, आर्थिक एवं मनोरंजन के मूल्य सबसे बुनियादी हैं जिनके बिना कोई नहीं रह सकता। इन्हें हम भले ही निम्नतर मूल्य कहते हैं लेकिन सभी को इन मूल्यों की परिपूर्ति से गुजरना होता है। हमारा विकास निम्नतर से उच्चतर की ओर होता है। जुड़ाव के मूल्य एवं चरित्रगत मूल्य वे हैं जो हमारे सामाजिक आत्म से जुड़े होते हैं और समाज के अन्य लोगों से संबंधित होने में इन मूल्यों की विशेष उपयोगिता है। सौन्दर्य, बौद्धिक एवं धार्मिक मूल्य हमारे आध्यात्मिक आत्क से जुड़े होते हैं और इनमे द्वारा उच्चतर स्थिति का अवबोध करते हैं। इनमें शारीरिक, आर्थिक एवं मनोरंजन के मूल्य मुख्यतः साधन मूल्य हैं जो किसी साध्य के लिए ही मूल्यवान हैं। जैसे भोजन से शरीर का निर्वहन होता है, मनोरंजन से मन की ताजगी आ जाती है इत्यादि। जुड़ाव के मूल्य एवं चरित्रगत मूल्य साधन एवं साध्यन मूल्य दोनों हैं। जबकि सौन्दर्य, बौद्धिक एवं धार्मिक मूल्य मुख्यतः साध्य मूल्य हैं। शारीरिक से लेकर धार्मिक मूल्य तक हम सतत् विकास की प्रक्रिया में होते हैं और यह मूल्यगत विकास ही हमारे जीवन में सुव्यवस्था लाता है। इनमे से कोई भी मूल्य ऐसा नहीं है जिससे कोई व्यक्ति बच निकल सकता है। बचपन से लेकर मृत्यु आने तक हमे सतत् रूप से इन मूल्यों को सीखते रहने की जरूरत है और हमे सतत् इनका अनुगमन करना चाहिए।

5.5 सारांश (Summary)

मूल्य अवबोध मूल्यों का आत्मसात किया जाना है जबकि वह हमारे आचरण का हिस्सा बन जाता है। मूल्य अवबोध की क्रमिक अवस्थाएँ व्यक्ति के नैतिक विकास को सुनिश्चित करती हैं। बचपन से लेकर मृत्यु तक मूल्य अवबोध की प्रक्रिया चलती रहती है। उसकी विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं जो यह दिखाती हैं कि नैतिक विकास के लिए स्थिति में हम पहुंचे हुए हैं। यह विकास बाह्य दबाव आधारित मूल्यों से अपने आप में साध्य रूप आंतरिक मूल्यों तक होता है। यह मूल्यगत विकास मुख्यतः हमारी तर्कणा या विश्लेषणात्मक क्षमता द्वारा निर्धारित होता है। जैसे–जैसे हमारी तर्कप्रणाली परिमार्जित होती जाती है वैसे हम उच्चतर मूल्यों की ओर बढ़ते जाते हैं। मूल्य संघर्ष की स्थितियों में हमारी नैतिक तर्कप्रणाली ही हमारा सबसे बड़ा मार्गदर्शक होती है। इस प्रकार नैतिक तर्कणा के परिमार्जन के द्वारा हम मूल्यगत विकास के रास्ते पर बढ़ते हैं और जैसे–जैसे हम आंतरिक मूल्यों के करीब आते हैं हमारा जीवन अधिक सुसंगत और लयबद्ध होता जाता है।

5.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. मूल्य अवबोध से आप क्या समझते हैं?
   What do you understand by value realization?

2. मूल्य अवबोध की विभिन्न अवस्थाएँ क्या हैं? व्याख्या कीजिए।
   What are the different stages of value realization? Explain.

3. मूल्य अवबोध का अवस्थागत परिवर्तन कैसे संभव होता है?
   How is the stages of change possible in value realization?

4. मूल्य संघर्ष क्या है? इसका समाधान कैसे किया जा सकता है?
   What is the value conflict? How can it be resolved?

6. क्या मूल्य अवबोध की प्रक्रिया आजीवन चलती हैं?
   Is value realization a life long process?

5.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Ruhela, S.P. & Nayak R.K. (2011): Value Educatiohn and Human Rights Education (Vol. I), Neelkamal Publication, New Delhi.
2. Bagchi, J.P. & Tekchandani V. (2005) : Value Education, University Book House, Jaipur
3. Rajpoot J.S. (2006) : Human Values and Education, Progress Publication, New Delhi.
4. Sharma, S.P. (2005) : Education and Human Development, Kanishka Publication, New Delhi.
5. Kalra, R.M. (2009) : Value Oriented Education in Schools : Theory & Practice, Shipra Publication Delhi.
6. Aggarwal, J.C. (2010): Education for Values, Environment and Human Rights, Shipra Publication, Delhi.
7. Gautam. N.C. (2005) : Moral Education, Shree Publication, New Delhi.

इकाई:6 सामाजिक एवं उपभोक्ता जागरूकता (Social and Consumer Awareness)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

6.0 उद्देश्य (Objective)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 सामाजिक जागरूकता (Social Awareness)

6.3 उपभोक्ता जागरूकता (Consumer Awareness)

6.4 उपभोक्ता के अधिकार (Consumer Rights)

6.5 उपभोक्ता के दायित्व (Consumer Responsibilities)

6.6 शिकायत निवारण (Redressal Mechanism)

6.7 सारांश (Summary)

6.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

6.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

6.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण:

- छात्र सामाजिक जागरुकता का अर्थ को समझ सकेंगे।
- छात्र उपभोक्ता, उत्पाद एवं उपभोक्ता जागरूकता का अर्थ समझ सकेंगे।
- छात्र उपभोक्ता जागरूकता की आवश्यकता को समझ उसके प्रति संवेदनशील हो सकेंगे।
- छात्र भारत में उपभोक्ता शिकायत निवारण की व्यवस्था को समझ सकेंगे।
- छात्र उपभोक्ताओं के अधिकार एवं दायित्व को समझ सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक रूप से जागरूक होना हमारे सम्पूर्ण जीवन पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। यह हमे एक स्वस्थ एवं संतुलित जीवन प्रदान करता है। आज के दौर में जबकि दुनिया एक बड़ा बाजार है और व्यक्ति एवं क्रियाशील उपभोक्ता, उपभोक्ता जागरूकता सामाजिक जागरूकता का केन्द्र बिन्दु हो जाता है। अपने विभिन्न प्रकार के जरूरतों एवं शैंकों को पूरा करने लिए व्यक्ति विभिन्न प्रकार के उत्पाद खरीदता है। लेकिन यदि खरीदा गया उत्पाद गुणवत्ता में खराब है या उसका अधिक दाम ले लिया गया है तो उपभोक्ता स्वयं को ठगा सा महसूस करता है। ऐसी स्थिति में उसे क्या करना चाहिए? वह कहाँ और कैसे शिकायत करे? उसके अपने अधिकार और कर्त्तव्य क्या हैं? इस तरह की बातों की जानकारी ही उपभोक्ता जागरूकता है। इस पाठ में हम उपभोक्ता जागरूकता पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

6.2 सामाजिक जागरूकता (Social Awareness)

सामाजिक रूप से जागरूक होना एक स्वस्थ जीवन शैली के लिए बेहद जरूरी है। यह न केवल व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करता है बल्कि हमारे पारिवारिक, पेशेवर और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता है। सामाजिक जागरूकता क्या है? वस्तुतः यह व्यक्ति की वह विशिष्ट क्षमता है जिसके द्वारा वह समाज की व्यापक समस्याओं एवं अन्य व्यक्तियों के साथ स्वयं को संगत तरीके जिसके द्वारा वह समाज की व्यापक समस्याओं एवं अन्य व्यक्तियों के साथ स्वयं को संगत तरीके से संबंधित करता है। वैसे तो यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है परंतु दोनों इसके बाद महत्वपूर्ण पक्ष हैं। व्यक्ति अपने आसपास के वातावरण और उससे जुड़ी समस्याओं को जितना बेहतर समझता है उतना ही बेहतर उनके प्रति सक्रिया करता है। उसी प्रकार अन्य व्यक्तियों के मन व व्यक्तित्व को वह जितना बेहतर समझ पाता है उतना ही बेहतर तरीके से उनसे जुड़ पाता है। अतः सामाजिक जागरूकता अपने परिवेशजगत और उस परिवेशजगत में रहने वाले अन्य व्यक्तियो की गहरी समझ एवं तदनुरूप आचरण करना है।

सामाजिक जागरूकता भावनात्मक बुद्धिमता एवं सह–अनुभूति जैसी क्षमताओं की मांग करता है। सैद्धान्तिक रूप से सामाजिक जागरूकता कई पहलुओं की साथ–साथ क्रियाशीलता है। इनमें मुख्य हैं– सामाजिक संवदेनशीलता, सामाजिक अंतर्दृष्टि, सामाजिक संप्रेषण इत्यादि। हम उसकी स्थिति को सह–अनुभूति की क्षमता है जिससे हम दूसरे के बारे में अनुमान लगा पाते हैं। हम उसक स्थिति को महसूस कर पाते हैं। सामाजिक अंतदृष्टि परिस्थिति को भाँपने की हमारी क्षमता एवं तदनुरूप लिए जाने वाले नैतिक निर्णयों से जुड़ी है। सामाजिक संप्रेषण अन्य के साथ संवाद एवं समस्या समाधान की हमारी क्षमता है। लेकिन इन सबसे महत्वपूर्ण है सामाजिक बुद्धिमता जो कि हमारे भावनात्मक बुद्धिमता कि क्षमता पर निर्भर करती है। भावनात्मक बुद्धिमता ही हमारे अंदर वह संवदेनशीलता एवं अंतर्दृष्टि लाती है जो हमे अन्य के साि बुद्धिमता पूर्वक जोड़ती है।

वर्तमान दौर से बाजार ही सबसे बड़ा समाज है। वैश्वीकरण एवं उपभोक्तावाद के निरंतर विस्तार ने व्यक्ति को एक उपभोक्ता एवं बाजार को ही समाज बना डाला है। ऐसे में सामाजिक जागरूकता के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में उपभोक्ता जागरूकता आ जाता है। इस पाठ में आगे हम उपभोक्ता जागरूकता पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

6.3 उपभोक्ता जागरूकता (Consumer Awareness)

उपभोक्ता जागरूकता पर बात करने से पहले हमे यह जानना चाहिए कि उपभोक्ता कौन है? उपभोक्ता विभिन्न प्रकार के उत्पादों और सेवाओं का खरीददार होता है तो पुनः बिक्री के लिए नहीं बल्कि अपने उपभोग के लिए उनका इस्तेमाल करता है। उत्पादन वे हैं जो उत्पादकों द्वारा तैयार कर थोक एवं खुदरा व्यापारियों के माध्यम से उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराये जाते हैं। विभिन्न प्रकार की सेवाएँ वे हैं जो सेवा प्रदायकों द्वारा उपभोक्ता को सशुल्क कुछ सुविधाएं प्रदान करती हैं यथा बैंक, बीमा, बिजली–पानी सेवा इत्यादि। चूंकि किसी भी समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में एक उपभोक्ता अवश्य ही होता है इसलिए उसका एक जागरूक उपभोक्ता होना निश्चित रूप से सामाजिक जागरूकता का एक बेहद महत्वपूर्ण आयाम है।

वर्तमान दुनिया में विभिन्न प्रकार के उत्पादों और सेवाओं की बाढ़ आई हुई है। साथ ही सूचना–तकनीकी के अत्यधिक विस्तार ने सभी को अपनी बात प्रभावशाली तरीके से प्रसारित करने की क्षमता प्रदान कर दी है। इस स्थिति में सबसे अधिक भम्र का शिकार उपभोक्ता को ही होना पड़ रहा है। आज उत्पादन और उसके खपत की दृष्टि से भौगोलिक दूरी का कोई अर्थ नहीं रह गया है। कोई भी समान कहीं भी उत्पादित किया जा सकता है और उसकी बिक्री भी कहीं की जा सकती हैं। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता के लिए सही उत्पादन का पता लगाना बेहद कठिन हो गया है। उत्पादन जब आसपास होते थे और बिक्री भी केवल लोकर दुकानदारों से होती थी तो उपभोक्ता कुछ हद तक पता लगा लेते थे कि उत्पादक कि साख कैसी है और बेचने वाले की साख कैसी है। परंतु जटिलता के बढ़ने से उपभोक्ता के लिए यह उतना आसान नहीं रह गया है। ऐसी परिस्थिति में किस उपभोक्ता को बेहद जागरूक रहने की जरूरत है। आज का उपभोक्ता यदि जागरूक नहीं रहेगा तो कई स्तरो पर उसके ठगे जाने की संभावना रहेगी। इसलिए उपभोक्ता जागरूकता एक बड़ी सामाजिक जागरूकता हा भी मामला है।

उपभोक्ता जागरूकता को हम निम्न बिन्दुओं के रूप में समझ सकते हैं:

- किसी भी उत्पाद की गुणवत्ता उसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू होता है। उपभोक्ता को अपने द्वारा खरीदे गए सामान या ली जाने वाली सेवा की गुणवत्ता के बारे में स्पष्ट जानकारी रखनी चाहिए। वह उत्पादन कितना शुद्ध है, स्वास्थ्य के लिए उसका प्रभाव कैसा है, पर्यावरण के लिए नुकसानदेह है या नहीं, पशु क्रूरता आदि से सम्बन्ध है या नहीं इत्यादि बातों की जागरूकता होना चाहिए।
- किसी भी उत्पाद को विभिन्न प्रचार माध्यमों द्वारा लोकप्रिय बनाया जाता है। आज की दुनिया प्राचर करने और धारणा बनाने में बहुत आगे है। टेलीविजन से लेकन सोशल मीडिया तक प्रचार साधनों की इतनी बहुलता है कि उपभोक्ता का गलत प्रचार का शिकार हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। इसलिए उपभोक्ता को प्रचार माध्यमों की प्रमाणिकता के प्रति जागरूक होना चाहिए। उसे प्रचार के दुष्प्रभावों को भली–भांति समझना चाहिए।
- उपभोक्ता को उत्पादन एवं सेवाओं के मूल्यों के प्रति भी जागरूक होना चाहिए। उसे मूल्यों की तुलतनात्मक जानकारी हासिल करनी चाहिए जिससे वह आर्थिक दृष्टि से ठगा न जा सके।
- उपभोक्ता को उत्पाद और सेवा की सीमा की भी जानकारी कर लेनी चाहिए। किसी उत्पाद का उपयोग कब तक सुरक्षित है?..... किसी सेवा को किस उम्र में लेना अधिक लाभकारी साबित होगा?..... इत्यादि।
- प्रायः व्यापारी उपभोक्ता को लुभाने के लिए कम दाम का प्रलोभन देकर बिल नहीं देते और उपभोक्ता भी उसे थोड़े पैसे बचाने के लालच में खुशी–खुशी खरीद लेता है। उपभोक्ता को यह जानकारी होनी चाहिए कि बिल न देकर व्यापारी अपने कर को बचा लेता है। इस कर की चोरी से सरकार को भारी नुकसान उठाना पड़ता है जिसका अंतिम खामियाजा उपभोक्ता को ही भुगतलना पड़ता है। सरकार जो जनहित का कार्य कर सकती थी वह नहीं कर पाती। इसलिए उपभोक्ता को कभी भी बिना प्रमाणिक बिल के उत्पादन खरीदने से बचना चाहिए।
- उपभोक्त को अपने उपभोक्ता अधिकार की जानकारी होनी चाहिए। उपभोक्ता का यह जानना चाहिए कि कानून के तहत उसे कुछ अधिकार प्राप्त हैं और उन अधिकारों का हनन होने पर वह कानूनी कार्यवाही का रास्ता ले सकता है।

उपभोक्ता को अपने जिम्मेदारियों के प्रति भी जागरूक होना चाहिए। एक उपभोक्ता के रूप में उसके अंदर यह जागरूकता होनी चाहिए की वह सीमित और संयमित उपभोग करे और चीजों को अनावश्यक रूप से बर्बाद न करे।

6.4 उपभोक्ता के अधिकार (Consumer Rights)

उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहना चाहिए। अपने अधिकारियों के प्रति जागरूक न रहने से वह उत्पादों और सेवाओं की दुनिया में हर कदम पर ठगा जाएगा। उपभोक्ता संबंधी अधिकारों को कम निम्न बिन्दुओं के रूप में समझ सकते हैं:–

- **सूचना पाने का अधिकार**: उपभोक्ता को उत्पाद के बारे में बुनियादी सूचनाएँ पाने का अधिकार है। उत्पादकों, वितरकों एवं सेवा प्रदायकों को स्पष्ट एवं पर्याप्त रूप से उत्पादन संबंधी सूचना अपने उत्पाद पर अंकित करना चाहिए। उदाहरण के लिए, मूल्य, वजन, ब्राण्ड, उत्पादन एवं अवसान की तिथियाँ, उत्पाद में प्रयुक्त संघटक पदार्थ, गुणवत्ता मार्का, कंपनी का संपर्क पता इत्यादि। इन सूचनाओं के द्वारा ही उपभोक्ता उत्पादन के बारे में जान पाता है और उसके बारे में तुलनात्मक खोजबीन कर पाता है।
- **चुनने का अधिकार**: उपभोक्ता को यह चुनने का अधिकार है कि वह क्या खरीदे और क्या न खरीदे। कभी–कभी उपभोक्ता को किसी उत्पाद या सेवा के विषय में दबाव का सामना करना पड़ता है क्योंकि दुकानदार या सेवा प्रदाता ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि उपभोक्ता के पास चुनने का बहुत विकल्प न हो और बिना इच्छा के भी वह उत्पाद या सेवा ले ले। उपभोक्ता को अपने चुनने के अधिकार के विषय में कभी दबाव में नहीं आना चाहिए।
- **सुरक्षा का अधिकार**: उपभोक्ता को सुरक्षित उत्पाद पाने का अधिकार है। यह अधिकार उपभोक्ताओं को

उत्पाद में विभिन्न प्रकार के मिलावटों से सुरक्षा देता हैं। ये मिलावट ऐसे भी हो सकते हैं जो जीवन को खतरे में डाल देते हैं जैसे– खाद्य या दवाइयों में होने वाले मिलावट।

- **शिकायत निवारण का अधिकार**: ऐसा बहुत बार होता है कि उपभोक्ता को किसी उत्पाद या सेवा के संदर्भ में ठगी या अन्याय का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए उपभोक्ता को शिकायत निवारण का अधिकार प्राप्त है। इसके लिए उपभोक्ता कोर्ट और अन्य प्रकार के मंच हैं जहां उपभोक्ता क्षतिपूर्ति का दावा ठोक सकता है।
- **उपभोक्ता शिक्षण का अधिकार**: सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाएं समय–समय पर उपभोक्ताओं को उत्पाद एवं सेवाओं के बारे में जागरूक करती रहती है। उपभोक्ता को ऐसे कार्यक्रमों में पहुँच का अधिकार है जो उपभोक्ता शिक्षण से जुड़े हैं। यह उपभोक्ताओं का अधिकार है कि सरकार एवं तंत्र विभिन्न माध्यमों से उन्हें शिक्षित करते रहें।

6.5 उपभोक्ता के दायित्व (Consumer Responsibilities)

उपभोक्ता जागरूकता केवल अधिकारों के विषय में ही जानना नहीं है बल्कि उपभोक्ताओं के भी अपने कुछ दायित्व हैं जिन्हें समझना और तदनुरुप आचरण करना उनके लिए अपेक्षित है। उपभोक्ता दायित्वों को हम निम्न बिन्दुओं के रुप में समझ सकते हैं:–

- **गुणवत्ता प्रमाणित उत्पादों को खरीदना**: उत्पादों को गुणवत्ता प्रमाणीकरण देने वाली कई राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं हैं जैसे– आई०एस०आई० मार्क, एगमार्क इत्यादि। उपभोक्ताओं का यह दायित्व है कि वे गुणवत्ता उत्पादों को ही खरीदें। इससे गुणवत्ता प्रमाणित न करानेवाले उत्पादक–वितरक हतोत्साहित होंगे।
- **प्रचार से सावधानी**: आज कि दुनिया में प्रचारतंत्र इतने हावी हैं कि उनसे सावधानी रखना हर उपभोक्ता का दायित्व है। कंपनियाँ बेहद आकर्षक तरीके के ऑडियो–विजुवल द्वारा उपभोक्ताओं के मानस पर अपनी छाप छोड़ने का प्रयास करती हैं। उपभोक्ताओं को इससे सावधान रहते हुए बच्चों को विशेष रूप से जागरूक बनाना चाहिए।
- **खरीद के बिल लेना**: बहुत से व्यवसायी उत्पाद का दाम कुछ कम करके ग्राहक को बिल नहीं देते। ग्राहक भी थोड़े से पैसे बचाने के चक्कर में बिल नहीं मांगता। परंतु इससे सरकार को मिलने वाला कर माना जाता है क्योंकि बिल न देकर व्यापारी अपना कर बचा लेता है। सरकारी खजाने का नुकसान अंततः उपभोक्ता का ही नुकसान है क्योंकि इससे वह अपनी तमाम सामाजिक सुविधाओं के साथ समझौता करता है जो सरकार उसे प्रदान कर सकती थी। इसलिए उपभोक्ताओं का यह दायित्व है कि वे बिना बिल लिए कोई उत्पाद न खरीदें।
- **पर्यावरण का ध्यान रखना**: उपभोक्ताओं का यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि वे उत्पाद खरीदते समय यह ध्यान में रखें कि कहीं वह पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक तो नहीं है? पर्यावरण वर्तमान विश्व की सबसे ज्वलंत समस्याओं में एक है। उपभोक्ताओं के पर्यावरण जागरूकता से ऐसे बहुत सारे उत्पादों का उत्पादन बंद या संशोधित हो सकता है जो हमारे पर्यावरण के लिए नुकसानदेह हैं।

6.6 शिकायत निवारण (Redressal Mechanism)

किसी भी प्रकार के धोखधड़ी या उत्पाद की खराब गुणवत्ता आदि की शिकायत हेतु अपने देश में शिकायत निवारणर का एक सम्पूर्ण कानूनी और प्रशासनिक तंत्र विकसित है। उपभोक्ता अपनी शिकायत लेकर उपभोक्ता अदालतों में जा सकते हैं और क्षतिपूर्ति का दावा ठोक सकते हैं। हालांकि आजादी के पूर्व से ही अपने यहाँ उपभोक्ताओं के शिकायत निवारण हेतु कानून विद्यमान रहे हैं, परंतु उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 (consumer protection act 1986) सबसे महत्त्वपूर्ण है जो उपभोक्ताओं के अधिकारों का सर्वांगीण रूप से संरक्षण करता है। उपभोक्ता हित के संरक्षण हेतु अनय कानून भी हैं यथा– Preventing of food adulteration

Act (PFA) 1954, Essential Commodities Act (ECA) 1955 एवं Standard of Weights and Measures Act (SWMA) 1976 । परंतु CPA उपभोक्ता हित का सबसे महत्वपूर्ण कानून है जिसे उपभोक्ताओं को सरल, सस्ता और त्वरित न्याय दिलाने हेतु लाया गया हैं

उपभोक्ताओं के शिकायत निवारण हेतु कई संस्थाएं काम कर रही हैं जिनका विस्तार जिलों तक है। मुख्य रुप से दो प्रकार की संस्थाएं हैंः– (1) सरकारी समितियां (Government Council) एवं (2) उपभोक्ता न्यायालय (Consumer Court) । इनके अलावा सरकारी मान्यता प्राप्त कई स्वयंसेवी संस्थाएं भी इस कार्य में लगी हुई हैं।

सरकारी समितियां (Government Councils)

सरकारी समितियां दो स्तरों पर कार्य करती हैं– केन्द्रीय एवं राजय स्तर। केन्द्रीय स्तर पर केन्द्रीय कंज्यूमर प्रोटेक्सन काउंसिल (CCPA) है जिसकी अध्यक्षता उपभोक्ता मामलों के केन्द्रीय मंत्री होते हैं जबकि हर राज्य के स्तर पर स्टेट कंज्यूमर प्रोटेक्सन काउंसिल (SCPC) होता है जिसकी अध्यक्षता उपभोक्ता मामलों के राज्य के मंत्री करते हैं।

उपभोक्ता न्यायालय (Consumer Courts)

भारत में उपभोक्ता न्यायालयों के तीन स्तर हैंः–

(1) राष्ट्रीय उपभोक्ता शिकायत निवारण आयोग (National Consumer Disputes Redressal Commission i.e. NCDRC)

(2) राज्य उपभोक्ता शिकायत निवारण आयोग (State Consumer Disputes Redressal Commission i.e. SCDRC)

(3) जिला उपभोक्ता फोरम (District Consumer Forum i.e. DCF)

जब कोई उपभोक्ता किसी प्रकार के ठगी का शिकार होता है तो वह न्याय के लिए किसी भी उपभोक्ता न्यायालय में जा सकता है और वकील के माध्यम से लिखित शिकायत दर्ज कर सकता है। 20 लाख रुपये तक के उत्पाद या सेवा की शिकायत वह जिला उपभोक्ता कोर्ट में कर सकता है। यदि मूल्य 1 करोड़ तक हो तो उसे राज्य आयोग जाना होगा। एक करोड़ से ऊपर के मामलों के लिए उसे केन्द्रीय आयोग का रुख करना होगा। CPA के अनुसार उपभोक्ता को 90 से 150 दिन के अंदर न्याय मिलना चाहिए। यदि उपभोक्ता जिला कोर्ट से संतुष्ट नहीं है तो वह राज्य आयोग में अपील कर सकता है। यदि वह राज्य आयोग से भी संतुष्ट नहीं हो पाता तो राज्य आयोग की अनुमति से केन्द्रीय आयोग से अपील कर सकता है।

आजकल शिकायत दर्ज करने हेतु बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाएं भी क्रियाशील रहती है। उनके माध्यम से भी शिकायत दर्ज किया जा सकता है। ये संस्थाएं न केवल शिकायल दर्ज कराती हैं बल्कि उपभोक्ताओं को केस लड़ने में हर प्रकार की सुविधा भी मुहैया करवाती हैं। शिकायत दर्ज करने हेतु स्वयंसेवी संस्थाओं के कुछ महत्वपूर्ण वेबसाइट निम्न हैंः–

Consumer Grievance - www.consumergrievance.com

Consumer Guidance Society of India - www.cgsindia.org

Common Cause- www.commoncauseindia.org

Consumer Forum - www.consumer.org.in

उपभोक्ता सहायता हेतु सबसे प्रसिद्ध संगठन ग्राहक जागो है। इसके बारे में लगभग सभी समाचार माध्यमों में समय–समय पर सूचना दी जाती है। उपभोक्ता अपने शिकायत को इसके वैबसाइट पर भी दर्ज कर सकते हैं। इसके अलावा बैंक, बीका, टेलकम आदि के शिकायत हेतु भी निम्न महत्वपूर्ण वैबसाइट हैंः–

_www.banking_ombudsman.rbi.org.in

_www.irdaindia.org

_www.incometaxindia.gov.in

_www.trai.gov.in

अंत में उपभोक्ताओं को यह सुनिश्चित कर लेना होगा कि वे गलत शिकायत से बचें। गलत शिकायत की स्थिति में कोर्ट शिकायतकर्ता पर जुर्माने लगा सकता है।

6.7 सारांश (Summary)

इस पाठ का समापन करते हुए सार रुप में हम कह सकते हैं कि उपभोक्ता जागरूकता वर्तमान विश्व के लिए केन्द्रीय सामाजिक जागरूकता है। जागरूक उपभोक्ता से ही जागरूक समाज का निर्माण होगा। उपभोक्ता जागरुकता उत्पाद एवं उत्पादक के बारे में जरूरी जानकारी रखने से जुड़ा हुआ है। साथ ही यह उपभोक्ताओं के अपने अधिकार एवं दायित्व कि समझ से भी जुड़ा हुआ है। जब हम इस सब बातों कि स्पष्ट जानकारी रखते हैं तो किसी भी प्रकार के ठगी कि स्थिति में क्या करना है यह हमे पता होता है। हम तत्काल शिकायत निवारण प्रणाली के तहत कार्रवाई करते है। निश्चित रुप से उपभोक्ताओं को बहुत सारे अधिकार प्राप्त होते हैं जिनकी जागरूकता उन्हें होनी चाहिए। परंतु उन्हे अपने कर्त्तव्यों के प्रति उतना भी जागरूक होना चाहिए। अपने दायित्वों के प्रति जागरूक रहकर ही वे समाज में ठगी या धोखेबाजी को कम कर पाएंगे।

6.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. सामाजिक जागरूकता से आप क्या समझते हैं?
   What do you understand by social awareness?
2. उपभोक्ता जागरूकता का क्या अर्थ है?
   What is the meaning of consumer awareness?
3. उपभोक्ता शिकायत निवारण का क्या अर्थ है?
   What is the maning of consumer redressal mechanism?
4. भारत में विद्यमान उपभोक्ता शिकायत निवारण प्रणाली पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
   Write a short note on consumer redressal mechanism present in India.
5. किसी भी प्रकार कि ठगी कि स्थिति में उपभोक्ता कहाँ शिकायत दर्ज करेंगे।
   In case of being cheated where will the consumer lodge a complaint.
6. उपभोक्ताओं को क्या अधिकार प्राप्त है?
   What are the rights of the consumer?
7. उपभोक्ताओं को किन दायित्वों के प्रति सजग होना चाहिए।
   What are the responsiblities towards which the consumers should be alert?

6.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Tripathi, A.N. (2009): Human Values, New Age International (P.) Ltd. Lucknow.
2. Chakarborty, S.K. & Chakraborty, Debangshu (2014) : Human Values and Ethics, Himalaya Publishing House, Delhi.
3. सिंह, जे० पी० (2017) : समाजशास्त्र : अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, PHI Learning Private Ltd., Delhi.

इकाई:07 वैश्विक विश्व में विश्व शांति की प्रासंगिकता (Relevance of World Peace in Global World)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

7.0 उद्देश्य (Objective)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

7.2 प्रथम विश्व युद्ध के कारण (Causes of the First World War)

7.3 प्रथम विश्व युद्ध में सम्मिलित राष्ट्र एवं युद्ध के परिणाम (Countries involved in the First World War and the results of the War)

7.4 राष्ट्र संघ की स्थापना (Casues of Second World War)

7.5 द्वितीय विश्व युद्ध के कारण (Causes of the Second World War)

7.6 द्वितीय विश्व युद्ध में सम्मिलित राष्ट्र एवं युद्ध के परिणाम (Countries involved in the Second World War and the results of the War)

7.7 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना (Establishment of United Nations Organisation)

7.7 सारांश (Summary)

7.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

7.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

7.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण:

- प्रथम विश्वयुद्ध के कारण को समझ सकेंगे।
- प्रथम विश्वयुद्ध में सम्मिलित राष्ट्र का नाम जान सकेंगे।
- प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम को स्पष्ट कर सकेंगे।
- राष्ट्र संघ की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण को समझ सकेंगे।
- द्वितीय विश्वयुद्ध में सम्मिलित राष्ट्र को नामांकित कर सकेंगे।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम को समझ सकेंगे।
- संयुक्त राष्ट्र संघ की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में युद्ध के विध्वंसकारी प्रभाव का वर्णन है। प्रभाव को देखते हुए राष्ट्रों द्वारा शांति के प्रयासों को भी दर्शाया गया है। प्रथम विश्व युद्ध के कारण एवं परिणाम तथा राष्ट्र संघ की स्थापना की विस्तार से चर्चा

की गई है। साथ ही यह पाठ द्वितीय विश्व युद्ध के कारण एवं परिणाम तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की भी व्याख्या करेगा। ये युद्ध तथा विश्व संगठनों के कारण विश्व में शांति बहाल करने की प्रक्रिया में आई आवश्यकता पर प्रकाश डालेगा।

7.2 प्रथम विश्व युद्ध के कारण (Casuse of the First World War)

बीसवीं सदी के प्रारंभ में यूरोप बारुद की ढेर पर बैठा हुआ था। यूरोप में घटित अनेक घटनाएँ आपसी सौहार्दय में बाधक थी। पूरा यूरोप दो खेमों में बँट गया था। प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र अपनी शक्ति बढ़ाने में जुटा हुआ था। आपसी द्वेष ने उन्हें अपनी नाविक शक्ति में वृद्धि और हथियार के होड़ में ठकेल दिया। मित्रराष्ट्र (tripple entitle) में इंगलैंड, फ्राँस, रुस, सर्बिया, जापान, पुर्तगाल, अमेरिका, रोमानिया, ग्रीस, सिआम, क्यूबा, पनामा, ब्राजील, गोटेमाला, डिकार्गुआ, कोस्टारिका इत्यादि थे। त्रिराष्ट्रीय मैत्री संबंध (triplealliance) में जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया, हँगरी, बुल्गारिया, और तुर्की था।

इस युद्ध से कोई अछूता नहीं रहा चाहे वो राष्ट्र हों, स्त्री या पुरुष हो, बूढ़े हो या बच्चे हों, काले हो या गोरे हों। यह दुनिया का सबसे भयानक युद्ध था जो अनेक कारणों से उत्पन्न हुआ और जिसकी पृष्ठभूमि पहले से तैयार हो रही थी।

1. **अत्यधिक राष्ट्रीयता (Too Much Nationalism):** फ्राँस की क्राँति ने राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में अहम भूमिका निभाई। इटली और जर्मनी के एकीकरण में राष्ट्रीयता की भावना जिम्मेवार थी। यही राष्ट्रीयता अन्य देशों में भी पंख फैला रही थी। फ्राँस जिसे ऐल्साके लोरेन चाहिए था, इटली को ट्रेन्टिनो ट्रियेस्टा का क्षेत्र, पोलेंड को विदेशी शासन से मुक्ति, सर्बिया को बाल्कन राज्य की कामना, रुस को स्लावों पर आधिपत्य जैसी भावनाएँ अत्यधिक राष्ट्रीयता को हवा दे रही थी और यह प्रथम युद्ध का कारण बना।

2. **कूटनीतिक संधियाँ (Diplomatic Treaties):** जर्मनी के बिस्मार्क ने फ्राँस को हराने के बाद सुरक्षा हेतु इटली और ऑस्ट्रिया–हँगरी के साथ गुप्त संधि की। इसके उत्तर में फ्राँस ने अपने वजन को बढ़ाने के लिए इंग्लैंड और रुस से मित्रता कर संधि की। अब पूरा यूरोप इन दो खेमों के पक्ष और विपक्ष में खड़ा था। युद्ध का एक बहुत बड़ा कारण यूरोप का मित्रराष्ट्र और त्रिराष्ट्र में बँट जाना था।

3. **सैन्य भाव आधिक्य और शस्त्रीकरण दौड़/स्पर्धा (Militarism and Armament Race):** अत्यधिक राष्ट्रीयता हर तरह की स्पर्धा उत्पन्न कर दी थी। हर एक क्षेत्र में राष्ट्रीय आर्थिक, अर्न्तराष्ट्रीय, एक तनाव सा उत्पन्न हो गया था। प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखता था। हर राष्ट्र में खड़ी सेना में वृद्धि और जल सेना के शस्त्रीकरण में होड़ लगा था। ऐसी अवस्था में युद्ध के लिए एक चिंगारी की जरुरत थी।

4. **उपनिवेशवाद और आर्थिक प्रतिस्पर्धा (Imperialism and Economic Competition):** बीसवीं सदी की शुरुआत में यूरोप में उद्योगों का विकास हुआ। नतीजन औद्योगिक राष्ट्रों को कच्चे माल और बाजार की जरुरत हुई। इन्हीं कारणों से उपनिवेशवाद का जाल फैला। उपनिवेश के लिए भी यूरोपीयन राष्ट्रों में एशिया, अफ्रीका एवं पूर्वी यूरोप पर आधिपत्य जमाना जरुरी था। उनके आर्थिक जरुरतों की पूर्त्ति यहीं हो सकती थी। उपनिवेश के लिए होड़ ने यूरोपीय राष्ट्रों में बेहद दुश्मनी उत्पन्न की।

5. **अर्न्तराष्ट्रीय अराजकता (International Anarchy):** रुस और जापान का 1905 युद्ध जिसमें रुस जैसे बड़े राष्ट्र को जापान ने हरा दिया। पूर्व में अपनी स्थिति नाजुक पाकर रुस ने बालकन में टाँग अड़ाया। जर्मनी ने फ्राँस को मोरक्कों में ललकारा। 1911 में जर्मनी और फ्राँस में तन गई। इंग्लैंड फ्राँस के पक्ष में खड़ा हो गया और जर्मनी को झुकना पड़ा। ऑस्ट्रिया ने 1908–09 में बोस्नीया हरजेगोवीना पर अधिकार जमा लिया। इसी बीच 1912–13 में बाल्कन युद्ध छिड़ गया जिसने माहौल को गर्म कर दिया। ऐसी स्थिति में शांति और सौहादर्य की बात सुनने वाला कोई राष्ट्र नहीं था। **डारविनियन सिद्धान्त** पर भी बहुतों का भरोसा था जो विषम परिस्थितियों में जीवित रह सका वही विकसित हुआ (Survival of the fittest).

6. **समाचार–पत्र के माध्यम का प्रभाव (Influence of Press and Means of Communication):** समाचार पत्र अपने देश की विचार धारा व्यक्त करता है। इस होड़ के माहौल में समाचार पत्र के समाचार ने देश की जनता को भड़काने का काम किया। जब ब्रिटेन के समाचार पत्र ने जर्मनी के शासक की आलोचना की

तो जर्मन लोग भड़क उठे। ठीक उसी प्रकार जब जर्मनी ने ब्रिटेन की आलोचना की तो अंग्रेज भड़क उठे। इसी तरह फ्राँस और जर्मनी के रिश्ते में दरार का एक कारण समाचार पत्र के समाचार थे। सर्बिया और ऑस्ट्रिया ने भी फरडीनेन्ड की हत्या के बाद ऐसे–ऐसे समाचार छापे कि दोनो ही देश के लोगों में आक्रोश फैल गया। इसी बीच रुस के समाचार पत्र में छपा समाचार 'रुस तैयार है फ्राँस को भी तैयार रहना चाहिए' जर्मनी में खलबली मचा दी। ऐसी अवस्था में शांति की सोच भी बेकार ही साबित हुई।

7. **अर्न्तराष्ट्रीय संगठन (International Organization):** यूरोप में कोई अर्न्तराष्ट्रीय संगठन नहीं था जो आपसी मतभेद सुलझा सके। **हेग सम्मलेन** 1899 और 1907 में अर्न्तराष्ट्रीय कानून और नैतिकता के नियम बनाए गए थे, पर प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र उसे अपने सहूलियत से प्रयोग में लाता था। एक प्रभावकारी अर्न्तराष्ट्रीय संगठन के अभाव में यूरोपीय राष्ट्रों के मनमानी पर प्रतिबंध लगाने वाला कोई नहीं था।

8. **युद्ध का तत्कालीन कारण (Immediate Cause of the War):** सर्बिया और ऑस्ट्रिया का संबंध 1908 से ही अच्छा नहीं था और 1914 में यह द्वेष चरम पर पहुँच गया। सर्बिया के कुछ उग्र राष्ट्रवादियों ने ऑस्ट्रिया के राजकुमार **फरडीनेन्ड** की उस समय हत्या कर दी जब वो सराजेवो जो बोस्निया की राजधानी थी में 28 जून 1914 को उसके दौरे पर थे। इस घटना ने आग में घी का काम किया और पूरा विश्व युद्ध की विभिषिका में समा सा गया।

7.3 प्रथम विश्व युद्ध में सम्मिलित राष्ट्र एवं युद्ध के परिणाम (Countries involved in the First World War and the results of the War)

चार साल, तीन महीने और ग्यारह दिन के भंयकर संघर्ष के बाद पेरिस की संधि 1919 में बहाल हुई। इसमें वसार्य की संधि प्रमुख थी जो जर्मनी के साथ की गई। इस युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुए।

1. **आर्थिक हानि (Economic Loss):** प्रत्यक्ष रुप में युद्ध में 1,000 (million) का व्यय हुआ, पर अप्रत्यक्ष हानि जो जान, माल को हुआ उसका आकलन मुश्किल है। अन्दाजन 1,32,000 करोड़ की संपत्ति नष्ट हो गयी।

2. **मानव शक्ति का नुकसान (Loss of Man Power):** मानव जीवन इस युद्ध से अत्यधिक प्रभावित हुआ। साठ करोड़ (million) लोग प्रत्यक्ष रुप में सैन्य कार्य में सम्मिलित हुए। इनमें आठ करोड़ सैन्य बल की मृत्यु हुई और 20 करोड़ (million) लोग घायल हुए।

3. **युद्ध में कर्ज (War debts):** युद्ध के समय हुए अप्रत्याशित खर्च ने सभी देशों की कमर तोड़ दी। कृषि उत्पाद घट गया, पैसे का मूल्य घट गया, व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में अराजकता सी फैल गई। नए कर लागू किए गए और राष्ट्रों को आर्थिक संकटों का समाना करना पड़ा रह था। आर्थिक संकट से उबरने के लिए मित्र राष्ट्रों को अमेरिका से कर्ज लेना पड़ा।

4. **मजदूर आंदोलन का विकास (Labour Movement):** युद्ध में सिर्फ सैनिकों की ही जरुरत नहीं थी। हथियार की जरुरत ने मजदूर की मांग बढ़ा दी। मजदूरों को अपने महत्व का एहसास हुआ और उन्होंने वेतन में बढ़ोतरी, काम के घंटे में कमी, बेहतर जीवन स्तर, सही आराम, मनोरंजन आदि जैसे माँगे प्रस्तुत किया। मजदूर संगठन गठित हुए और मजदूर आंदोलन का विकास हुआ। धीरे–धीरे इन संगठनों का प्रभाव सरकार पर भी पड़ा और राजनीति में लेबर पार्टी का उदय हुआ। सरकार के प्रशासन में मजदूर वर्ग को भी मान्यता प्राप्त हुई।

5. **राष्ट्रीय समाजवाद का उदय (Rise of National Socialism):** युद्ध के दौरान बेहतर प्रबंधन एवं अर्थव्यवस्था पर अधिकार करने हेतु सरकार ने कुछ कारखानों पर नियंत्रण कर लिया। मुख्य रुप से वैसे उद्योग जो युद्ध को सीधे प्रभावित करते थे जैसे, हथियार उद्योग, लौह और कोयला खाद्यान्न, रेल और सड़क ट्राँस्पोर्ट आदि।

6. **स्त्री की स्थिति में बदलाव (Change in Status of Women):** सैनिक की माँग ने पुरुषों को अन्य नौकरी छोड़ने पर मजबूर कर दिया। ऐसी स्थिति में उनकी जगह कारखानों में, दुकानों में, ऑफिसों में स्त्रियों ने ले लिया। युद्ध के मैदान में भी नर्स के रुप में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस तरह वे घर की चारदिवारी

से निकल राष्ट्र के आर्थिक विकास में सहभागिता निभाई। उनमें आत्मविश्वास जगा। अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हुई। राजनीतिक जागरुकता भी आई और वे राजनैतिक अधिकारों की माँग करने लगी, खासकर वोट देने का अधिकार।

7. **जाति की समानता (Equality of races):** यूरोपीय अभी तक अपने को एक श्रेष्ठ जाति समझते थे। इस युद्ध ने यह भ्रम तोड़ दिया। युद्ध के दौरान एशिया, अफ्रीका के देशों से सैनिक की बहाली करनी पड़ी और वे युद्ध में यूरोपीय के ही समान दिखे। इससे यूरोपीय की श्रेष्ठता का भ्रम टूटा और सभी जाति की समानता का विचार विकसित हुआ।

8. **धार्मिक श्रेष्ठता का भ्रम (Illusion of Religious Supremacy):** युद्ध के दौरान दोनों ही गुटों के धार्मिक नेता यही प्रचार कर रहे थै कि उनका युद्ध करना सही है ईश्वर उन्हें ही विजयी बनाए। ये सारे यूरोपीय देश ईसाई धर्म में विश्वास करने वाले थे। धर्म का युद्ध को समर्थन लोगों में भ्रम पैदा करने लगाा। विज्ञान का विकास पहले ही धर्म को चुनौती दे रहा था उस पर युद्ध के समर्थन ने लोगों को संशयवादी और नास्तिक बना दिया।

9. **शिक्षा और विज्ञान की हानि (Damage to education and science):** युद्ध ने शिक्षा को छोड़ लोगों को सेना में भर्ती होने पर मजबूर कर दिया। शिक्षा पर होने वाले व्यय में भी बहुत कमी आ गई। एक ही क्षेत्र में थोड़ा विकास हुआ था युद्ध के विज्ञान में जहाँ नए–नए अविष्कार हुए।

10. **अर्न्तराष्ट्रीय संगठन का विकास (Development of World Organisation):** अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन मजदूरों की समस्याओं एवं कल्याण के लिए और राष्ट्र संघ राजनैतिक समस्याओं के हल के लिए विकसित हुआ।

7.4 राष्ट्रसंघ की स्थापना (Establishment of League of Nations)

युद्ध के बाद शांति का प्रयास कुछ नया नहीं है। युद्ध की पुनरावृत्ति को रोकने हेतु विश्व संगठन के विकास को प्रोत्साहन मिला। वैधानिक रुप से 10 जनवरी, 1920 को राष्ट्रसंघ अस्तित्व में आया।

1. **राष्ट्रसंघ के प्रमुख उद्देश्य (Main objectives of League of Nations)**

i) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करना, अर्थात न्याय और सम्मान के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की स्थापना करके भावी युद्धों को रोकना।

ii) राष्ट्रों के बीच भौतिक तथा मानसिक सहयोग को प्रोत्साहन देना ताकि मानव जीवन सुखी बने और

iii) पेरिस संधि को क्रियान्वित करना।

2. **राष्ट्र संघ के अंग (Organs of the League of Nations)**

(1) इसके तीन प्रधान अंग थे। साधारण सभा (Assembly), (ii) परिषद् (Council), (iii) सचिवालय (Sectariat) इसके अतिरिक्त दो स्वायत्तशासी (autonomous) अंग थे।

(1) अन्तर्राष्ट्रीय न्याय का स्थायी न्यायालय (Permanent Court of International Justice),

(2) अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ (International Labour Organisation)

3. **साधारण सभा (General Assembly)**: इसमें संघ के सभी सदस्य शामिल थे। इसमें प्रत्येक सदस्य देश तीन प्रतिनिधि भेज सकता था पर उसका मत एक ही माना जाता था। राष्ट्र संघ में मतैक्य का नियम अपनाया गया था। यह राष्ट्रसंघ के कार्यक्षेत्र में आने वाले किसी भी विषय पर और संसार में शांति पर प्रभाव डालने वाले किसी भी विषय पर अपनी बैठक में विचार कर सकता था। यह एक परामर्शदायी संस्था थी। इसका अधिवेशन खुला होता था और जनता दर्शक के रुप में शामिल हो सकती थी।

4. **परिषद् (Council):** यह राष्ट्रसंघ की कार्यकारिणी संस्था थी। इसकी सदस्यता सीमित थी। इसमें दो प्रकार के सदस्य थे स्थायी और अस्थायी। ब्रिटेन, फ्राँस, इटली और जापान ये चार स्थायी सदस्य थे। एक सीट अमेरिका के लिए रिक्त रखा गया जो कभी नहीं भरा क्योंकि अमेरिका इसमें शामिल ही नहीं हुआ। बाद में स्थायी

सदस्यों की संख्या 4 और अस्थायी सदस्यों की संख्या 6 रही। अस्थायी सदस्य बदलते रहते थे। यह एक शक्तिशाली संगठन था जिसे वैधानिक अधिकार प्राप्त था। सदस्य राज्य परिषद में अपने प्रधान मंत्री या विदेश मंत्री को प्रतिनिधि के रुप में भेजते थे अतः विभिन्न देशों को एक दूसरे के निकट आने का मौका मिलता था।

5. **सचिवालय (Secretariat):** ये जेनेवा में स्थापित था। इसका प्रधान महासचिव (Secretary General) होता था। इनके अधीन दो उप–माहसचिव (Deputy Secretary) और दो अवर सचिव (Under Secretary) थे। लगभग 600 अन्य कर्मचारी कार्यरत थे जो अन्तर्राष्ट्रीय शासकीय सेवा के अन्तर्गत 50 देशों से चयनित होते थे। इसमें 11 विभाग थे जो विभिन्न निदेशक (Director) के अधीन थे। यह सभा एवं परिषद् दोनों के लिए कार्य करता था। यह राज्य सरकार के सचिवालयों जैसा ही कार्य करता था।

6. **अन्तर्राष्ट्रीय न्याय का स्थाई न्यायालय (Permanent Court of International Justice):** समस्या के शांतिपूर्ण हल का मुख्य सिद्धान्त मध्यस्थता और न्यायिक समझौता था। न्यायालय का काम प्रस्तुत वाद (Case) को सुनने के अलावा सभा अथवा परिषद् को परामर्श देना भी था।

7. **अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organization):** इसके प्रधान उद्देश्य थेः (1) सामाजिक न्याय के आधार स्थायी शांति स्थापना में योग देना (2) अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही द्वारा श्रमिकों की स्थिति और उनके जीवन–स्तर में सुधार लाना एवं (3) आर्थिक तथा सामाजिक स्थिरता को प्रोत्साहन देना।

राष्ट्रसंघ की स्थापना विश्व इतिहसा की एक महत्वपूर्ण घटना है। ये छोटे विवादों को हल करने में सफल हुई जैसे आर्थिक संकटग्रस्त देशों को संकटों का सामना करने और पुनर्निर्माण में बहुमूल्य योगदान दिया (ऑस्ट्रिया)। बड़े और महत्वपूर्ण विवादों के समाधान में ये असमर्थ रहा। इसका सबसे बड़ा कारण था कि इसके पास अपनी सेना नहीं थी। यह भी दुर्भाग्यपूर्ण था कि अमेरिका इसमें शामिल ही नहीं हुआ। महाशक्तियों में निष्ठा का अभाव था। इन्हीं सब कारणों से राष्ट्रसंघ अपने कार्यों में सफल नहीं हो सका।

7.5 द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण (Causes of the II World War)

बीस वर्षों की शान्ति के उपरान्त 1 सितम्बर, 1939 में पुनः युद्ध भड़क उठा। दोबारा विश्व दो खेमों में बँट गया। एक गुट प्रजातंत्र के लिए खड़ा था तो दूसरा तानाशाह के लिए/एक खेमे में रोम–बर्लिन–टोक्यो था (Axis Power) दूसरे खेमे में इंग्लैंड, फ्राँस, रुस और अमेरिका था (मित्र राष्ट्र Allied Powers)।

1. **वार्साय की अपमान जनक संधि (Humiliating Treaty of Versailles):** इस संधि ने जर्मनी के सम्मान को ठेस पहुँचाया। जर्मनी का अधिकांश हिस्सा पोलेन्ड और फ्राँस में सम्मिलित कर दिया गया। जर्मनी व अन्य पराजित राष्ट्र से क्षतिपूर्ति की विशाल राशि की मांग की गई। आर्थिक सम्पन्न क्षेत्रों को छीनकर क्षतिपूर्त्ति की मांग शोषण की पराकाष्ठा थी। उस पर विश्व आर्थिक मन्दी की दौर से गुजर रहा था। इसका परिणाम हुआ कि जर्मनी में उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा तेजी से पनपने लगी। **हिटलर** का विचार और प्रचार युद्ध का कारण बना।

2. **तानाशाहों का उदय (Rise of Dictators):** जर्मनी ने नाजी पार्टी का उदय हुआ जिसका नेता **हिटलर** था। इटली में फासिस्ट का उद्भव जिसका नेता **मुसोलिनी** था। स्पेन में **जनरल फ्राँको** का आगमन। इन तानाशाहों ने भी युद्ध की तरफ विश्व को ठकेल दिया।

3. **उग्र राष्ट्रवाद (Extreme Nationalism):** प्रथम विश्व युद्ध के बाद भी अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना विकास नहीं हुआ। इसके विपरीत उग्र राष्ट्रीयता का विकास हुआ। राष्ट्र का हित सर्वोपरि था। अपने राष्ट्र को महान (Glorious) और शक्तिशाली बनाने का होड़ लग गया जिससे विश्व में अस्थिरता कायम हो गई।

4. **तुष्टिकरण की नीति (Policy of Appeasement):** ब्रिटेन शक्ति सन्तुलन की नीति में विश्वास करता था। न तो वो जर्मनी को बिल्कुल पंगु बनाना चाहता था, न ही फ्राँस को शक्तिशाली बनने देना चाहता था। साथ ही रुस के भी प्रभाव क्षेत्र को यूरोप में नहीं बढ़ने देना चाहता था। अतः वह तुष्टीकरण की नीति अपनाता था, जैसे, जब जर्मनी रुस की ओर बढ़ा तो उसे रोकने की कोई कोशिश नहीं हुई। इसी तरह जब जर्मनी ऑस्ट्रिया पर अधिकार जमा लिया तो फ्राँस और ब्रिटेन ने उँगली तक नहीं उठाई। इस तरह जर्मनी की हिम्मत बढ़ती गई और ऐसा महसूस होने लगा कि यूरोप के अन्य देशों में युद्ध करने की ही क्षमता नहीं है। संयुक्त सुरक्षा की भावना भी डगमगाने लगा।

5. **राष्ट्रसंघ की असफलता (Failure of the League of Nations):** आर्थिक मदद के क्षेत्र में खासकर राष्ट्रसंघ द्वारा किए गए सराहनीय कार्य को देखते हुए पचास देशों ने इसकी सदस्यता ग्रहण की। पर जब बड़े राष्ट्रों द्वारा नियमों की अवेहलना होती थी तो राष्ट्रसंघ असहाय हो जाता था। जैसे इटली ने अबसीनिया (1935) पर आक्रमण किया तो राष्ट्रसंघ ने कुछ कदम उठाए पर ब्रिटेन और फ्राँस ने साथ नहीं दिया। इस प्रकार अन्य विश्व समस्या में भी राष्ट्रसंघ कारगर नहीं हो सका। इस कारण छोटे देशों में राष्ट्रसंघ के प्रति संदेह और अविश्वास जाग गया।

6. **दो सैन्य खेमों की उत्पत्ति (Rise of two military blocs):** एक तरफ रोम–बर्लिन–टोक्यो ने धुरी राष्ट्र का गठबंधन किया। दूसरी तरफ ब्रिटेन, फ्राँस, अमेरिका और रुस ने मित्र राष्ट्र का गठन किया। सब अपने हित की बात सोचते थे। इसमें कोई मध्य मार्ग नहीं था या तो धुरी राष्ट्र या मित्र राष्ट्र का वर्चस्व ही अन्तिम सत्य था। युद्ध अवश्वमभावी था।

जर्मनी ने पौलेण्ड पर आक्रमण कर दिया तब पौलेण्ड का समर्थन ब्रिटेन और फ्राँस ने किया और दूसरे महायुद्ध की शुरुआत हो गई।

7.6 द्वितीय विश्व युद्ध में सम्मिलित राष्ट्र एवं युद्ध के परिणाम (Countries involved in the Second World War and the results of the War)

1. द्वितीय विश्वयुद्ध में दो मुख्य गुट थे एक धुरी राष्ट्र जिसमें जर्मनी, इटली और जापान था। स्पेन भी इसका समर्थक था। दूसरा मित्र राष्ट्र जिसमें ब्रिटेन, फ्राँस, अमेरिका और रुस था। जब युद्ध छिड़ा तो यूरोपीय देश, उपनिवेश सब युद्ध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से शामिल हो गए। पोलैंड, नार्वे, डेनमार्क, नीदरलैंड, बेल्जियम, लक्जमबर्ग, यूनान तथा क्रेट को मित्र राष्ट्रों का समर्थन था। युद्ध अफ्रीका ईस्ट इण्डीज तथा उत्तरी काकेशस में भी हुआ। जापान के शामिल होने से एशिया भी युद्ध के चपेट में आया। युद्ध तो भारत के दरवाजे तक भी पहुँचा। समूचा विश्व इसकी चपेट में था। **हिटलर** के विद्युत–वेगीय (Blitzkrieg) युद्ध ने समूचे संसार को चकित कर दिया। इस युद्ध के परिणाम भी भंयकर थे।

2. **युद्ध के प्रविधि (तकनीक) में बदलाव (Change in Techniques of Warfare):** वायुसेना ने इस युद्ध में स्थल और जल सेना से ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परमाणु बम के प्रयोग ने दुनिया को घोर संकट में डाल दिया। यह स्पष्ट हो गया कि मानव ने ऐसी शक्तियों का अविष्कार किया है जो मानव सभ्यता का नाश कर सकता है।

3. **दो विचारधाराओं का विकास (Development of two Contradictory Ideologies):** नई विचारों का जन्म हुआ जो समाज का नए तरीके से पुर्नसंगठन करना चाहता था। प्रजातांत्रिक विचारधारा सामाजिक असमानता हटाना चाहती थी पर पूंजीवादी और श्रमिकों के बीच, जमींदारों और किसानों के बीच समन्वय रखना चाहती थी। दूसरी तरफ साम्यवादी थे जो वर्गविहीन समाज की चाहत रखते थे।

4. **दो दलों में विश्व विभाजित (World Divided in two blocs):** विश्व युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप देश साम्यवादी विचार धारा के समर्थक हो गए और रुस के संरक्षण में एक दल का निर्माण हुआ। उसी प्रकार पश्चिमी यूरोप के देश जिन्हें साम्यवादी विचार में भरोसा नहीं था और उसके विकास को रोकना चाहते थे अलग दल के रुप में विकसित हुए। इस तरह शीत युद्ध की शुरुआता हुई।

5. **यूरोप की सर्वोच्चता का अन्त (End of European Supremacy):** विश्व का नेतृत्व ब्रिटेन के हाथ से निकल अमेरिका और रुस के वर्चस्व की लड़ाई हो गई। ब्रिटेन ने अपने उपनिवेश के साथ ब्रिटिश कॉमनवेल्थ को विकसित किया।

6. **गुट निरपेक्ष संगठन का उदय (Development of Non-alignment Organisation):** नवीन राष्ट्र जो पहले उपनिवेश थे वे अपने को शीत युद्ध से अलग रखना चाहते थे। अफ्रीका और एशिया के राष्ट्रों ने गुटनिपेक्ष आन्दोलन में अपने को शामिल किया।

7. **संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना (Establishment of United Nations Organisation):** द्वितीय विश्व युद्ध के भयावह परिणाम के बाद मानवता की सुरक्षा एवं शांति के लिए संगठन की आवश्यकता फिर महसूस

हुई। इस प्रकार कोशिशों के बाद 51 देशों ने सन फ्राँसिस्को सम्मेलन में भागीदारी कर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की।

8. द्वितीय विश्व युद्ध अत्यन्त विनाशकारी था और विनाश का सही अनुमान लगाना संभव नहीं था। दोनों पक्षों के लगाभग 2½ करोड़ से अधिक सैनिक मारे गए। एक करोड़ से अधिक घायल हुए। इसके अतिरिक्त करोड़ों असैनिक नागिकरों का जीवन बम–वर्षा आदि कारणों से नष्ट हुआ। एक लाख करोड़ से अधिक रुपयों का व्यय तो केवल मित्र राष्ट्रों का हुआ और सम्भवतः इससे कम व्यय धुरी राष्ट्रों का नहीं हुआ होगा।

7.7 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना (Establishment of United Nations Organisation)

प्रथम विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय शांति स्थापना के लिए राष्ट्र संघ का निर्माण हुआ। अपनी कमजोरियों और महाशक्तियों के असहयोग के कारण यह सफल नहीं हो सका। द्वितीय विश्व युद्ध 1939 में शुरु हुआ और अपार धन जन के विनाश के बाद 1945 में समाप्त हुआ। मित्रराष्ट्रों की यह धारणा थी कि शांति स्थापना करने का एक मात्र मूल आधार विश्व के सभी स्वतंत्र राष्ट्रों का ऐच्छिक सहयोग है ताकि युद्ध और आक्रमण के भय का अन्त हो जाए। इसके बाद ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो का सिलसिला चला। अटलॉटिक घोषणा (1941) को ही संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्मदाता माना जाता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ (घोषण) चार्टर को अन्तिम रुप देने के लिए सान–फ्राँस्सिको में सम्मेलन हुआ। 26 जून, 1945 को 55 देशों के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर के साथ इस चार्टर को स्वीकार कर लिया गया। 24 अक्टूबर, 1945 को यह चार्टर लागू हुआ अतः, यह दिन संयुक्त राष्ट्रसंघ दिवस के रुप में प्रसिद्ध है।

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य (Objectives of United Nations Organisation)

1. यह समस्त सदस्यों की समान प्रभुता पर आधारित है।
2. हर सदस्य को चार्टर के अधीन अपनी जिम्मेदारियों को नेक नीयत के साथ पूरा करना है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्ति के साथ इस तरह हल करना है कि शान्ति, सुरक्षा और न्याय को कोई खतरा पैदा न हो।
4. सदस्य राष्ट्र अपने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में न तो धमकी देंगे और न दूसरे राष्ट्रों पर हमला करेगे।
5. अगर संयुक्त चार्टर के अनुसार कोई कदम उठाएगा तो सभी सदस्यों को उसे पूरी तरह सहायता देना होगा और उन देशों की सहायता नहीं करनी होगी जिनके विरुद्ध रोकथाम या किसी फैसले को लागू करने के लिए कदम उठाया जा रहा है।
6. चार्टर के अधीन संयुक्त राष्ट्रसंघ को किसी राष्ट्र के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का कार्यक्षेत्र विस्तृत था। उसकी व्यवस्था के लिए विभिन्न विभागों की स्थापना की गई। चार्टर के अनुसार राष्ट्रसंघ के छः विभाग या अंग है।

2. महासभा (General Assembly): महासभा संघ की व्यवस्थापिका सभा कहा जा सकता है। संघ के सभी सदस्य महासभा के सदस्य होते हैं। इसके प्रस्ताव बाध्यकारी नहीं है। प्रत्येक सदस्य राज्य पाँच प्रतिनिधि भेजन का अधिकार रखते हैं पर उनका मत एक ही होता है। महासभा के एक अध्यक्ष और सात उपाध्यक्ष होते हैं। महासभा प्रत्येक अधिवेशन के लिए अपना सभापति चुनती है। इसका अधिवेशन वर्ष में एक बार होना अनिवार्य है। महासचिव द्वारा या संघ के सदस्यों की बहुमत प्रार्थना पर विशेष अधिवेशन भी बुलाया जा सकता है। महासभा में महत्वपूर्ण निर्णय उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से तय होता है।

3. सुरक्षा परिषद् (Security Council): यह संयुक्त राष्ट्र संघ की कुंजी है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति बनाए रखने का मुख्य दायित्व इसी पर है। इसके पाँच स्थायी सदस्य हैं ब्रिटेन, फ्राँस, अमेरिका, रूस एवं चीन। इसके दस अस्थायी सदस्य होते हैं जो दो वर्षों के लिए चुने जाते हैं। नियम के अनुसार परिषद् की बैठकों के बीच

14 दिन से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। परिषद् का सभापतित्व परिषद् के सदस्यों में से अँग्रेजी वर्णमाला के अनुसार सदस्य राष्ट्रों के नाम के क्रम से प्रतिमास बदलता रहता है। परिषद् के प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को एक मत प्राप्त है। पाँच स्थायी सदस्य को (वीटो शक्ति) (Veto Power) विशेषधिकार है।

4. आर्थिक और सामाजिक परिषद् (Economic and Social Council): यह परिषद् विश्व के लोगों के लिए आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न कार्य करती है। इस परिषद् में महासभा द्वारा चुने हुए संयुक्त राष्ट्रसंघ के 27 सदस्य होते हैं। इनमें से 9 सदस्य प्रति तीन वर्ष के लिए चुने जाते हैं। परिषद् में प्रत्येक सदस्य राज्य का एक प्रतिनिधि होता है। यहाँ सभी निर्णय उपस्थित सदस्यों के साधारण बहुमत द्वारा किए जाते हैं। इसी परिषद् की एक विशेष संस्था है अन्तर्राष्ट्रीय बाल कल्याण निधि (United Naitons International Children Emergency Fund-UNICEF) परिषद् के लक्ष्य बहुत ऊँचे आदर्शों पर आधारित है। यह संसार से गरीबी और अभावों को मिटाकर एक स्वस्थ और सुन्दर विश्व के निर्माण के लिए प्रयत्नशील है। परिषद् की प्राविधिक सहायता समिति (Technical Assistance Council) का मुख्य उद्देश्य ही दुःख और दरिद्रता से मानव जाति को छुटकारा दिलाना है। परिषद् का एक लक्ष्य मानव अधिकारों को प्रोत्साहन देना है। मानव अधिकारों का महत्व प्रकट करने के लिए ही प्रतिवर्ष 10 सितम्बर को मानव अधिकार दिवस मनाया जाता है। इसी दिन 1948 में मानव अधिकारों संबंधी घोषणा पत्र स्वीकारा गया था (Declaration of Human Rights)।

5. **न्यास परिषद् (Trusteeship Council):** न्यास व्यवस्था का मुख्य सिद्धान्त यह है कि विश्व में अनेक पिछड़े हुए तथा अविकसित प्रदेश हैं जिनका विकास तभी सम्भव है जबकि सभ्य और उन्नत देश उन्हें सहयोग प्रदान करें। अतः उन्नत देशों का यह कर्त्तव्य है कि वे स्वयं को न्यासी समझकर अविकसित प्रदेशों के हितों की देखभाल करते हुए उनके विकास में हर संभव सहयोग दे। अब स्वतंत्र राज्यों को न्यासी देशों की जरुरत नहीं रही और 1994 से यह परिषद् कार्य नहीं कर रही। यह परिषद् निष्क्रिय है।

6. **अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (The International Court of Justice):** यह वही पुराना अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय है जिसे राष्ट्रसंघ ने 1922 में हेग में स्थापित किया था। इसमें 15 न्यायधीश होते है जिन्हें महासभा और सुरक्षा परिषद् 9 वर्षों के लिए चुनता है। यहाँ सभी निर्णय बहुमत से लिए जाते हैं। न्यायालय के निर्णय के कार्यन्वन के लिए सुरक्षा परिषद् के 9 सदस्यों की स्वीकृति आवश्यक है। पाँचों स्थायी सदस्यों की स्वीकृति इसमें शामिल है।

7. **सचिवालय (Secretariat):** सचिवालय में एक महासचिव होता है जिसके अधीन अनेक पदाधिकारी काम करते हैं। महासचिव की नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा द्वारा की जाती है। प्रत्येक सदस्य राज्य यह प्रतिज्ञा करता है कि वह महासचिव और कर्मचारियों के दायित्व के निर्वाह में मदद करेगा और किसी प्रकार का प्रभाव डालने की कोशिश नहीं करेगा। इसका प्रधान कार्यालय न्यूयॉर्क तथा जेनेवा में है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का महासचिव अधिकार सम्पन्न और प्रभावशाली है। उसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने का अनेक अवसर प्राप्त होता है। वह एक निष्पक्ष अधिकारी है और विश्व संस्था का प्रवक्ता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक समस्याओं का समाधान करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को प्रोत्साहन देना है। संघ के आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र के कार्य भी काफी महत्वपूर्ण हैं। अबतक उसके सामने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय विवाद आए हैं जिनको सुलझाने में उसे सफलता भी मिली है और निराशा भी हाथ लगा है।

7.8 सारांश (Summary)

विकास के लिए शांति अति आवश्यक है। शांति के भंग होने से राष्ट्रों के नुकसान का अन्दाजा लगाना भी मुश्किल हो जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध से विश्व शांति भंग हुआ। इस युद्ध के अनेक कारण थे पर उग्र राष्ट्रवाद में इसका बीज समाया हुआ था। युद्ध के पश्चात शांति बहाल करने के लिए विश्व संगठन की जरुरत महसूस हुई और राष्ट्रसंघ की उत्पत्ति हुई। राष्ट्रसंघ के प्रयास दूसरे विश्व युद्ध को नहीं रोक पाया। यह युद्ध प्रथम विश्व युद्ध से भी ज्यादा विनाशकारी था क्योंकि इस युद्ध के दौरान युद्ध करने के वैज्ञानिक तकनीक और अधिक

विकसित हो चुके थे। प्रथम विश्व युद्ध के बीस साल के बाद ही दूसरा विश्व युद्ध लड़ा गया और दुनिया ने जो विनाश देखा उसका आकलन करना नामुमकिन सा हो गया। अब जरुरत पड़ा राष्ट्रसंघ से अधिक शक्तिशाली विश्व संगठन बनाने की, और जन्म हुआ संयुक्त राष्ट्रसंघ का जो आज भी कार्यरत है और पूरी कोशिश में लगी रहती है कि विश्व लिए युद्ध न देखे।

7.9 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. प्रथम विश्व युद्ध के क्या कारण थे?
   What were the causes of the 1st World War?
2. 'उग्र राष्ट्रवाद ही प्रथम विश्व युद्ध का मुख्य कारण था।' विवेचना करें।
   'Extereme nationalism was the root cause of the 1st World War', Discuss.
3. प्रथम विश्व युद्ध के क्या परिणाम हुए?
   What were the results of the 1st World War?
4. राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों का वर्णन करें।
   Describe the various parts of the League of Nations.
5. 'वार्साय की संधि ने दूसरे विश्व युद्ध को आमंत्रित किया'। विवेचना कीजिए।
   'The treaty of Versailles invited the IInd World War'. Discuss
6. द्वितीय विश्व युद्ध के क्या परिणाम हुए?
   What were the results of the IInd World War?
7. संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों का वर्णन कीजिए।
   Describe the various organs of the United Nations Organisations.

7.10 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

- Black, Jeremy (Editor) (1999): World History, Paragon Publishing, U.K.
- Dev. Arjun & Dev. Indira Arjun: Mittal Books.
- Jain, H.C. & Mathur, K.C.: A History of the Modern World 1500 AD–2000 AD Jain Prakashan Mandir, Jaipur.
- Jain, H.C. & Mathur, K.C.: World History 15000–1950, Jain Prakashan Mandir, Jaipur.
- वर्मा, दीनानाथ, सिंह शिव कुमार (2017) : विश्व इतिहास का सर्वेक्षण, भारती भवन पटना।
- शर्मा, मथुरालाल (2009) : आधुनिक विश्व 1917–1945, विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

इकाई:08

विश्व–शांति हेतु प्रमुख संस्थाएँ
(Important Organization for World Peace)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

8.0 उद्देश्य (Objective)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 विश्व शांति से संबंधित महत्वपूर्ण संस्थाएँ
(Important Organization related to world peace)

8.3 मूल्य–निर्धारण की प्रक्रिया (Process of Determinig Value)

1. यूनेस्को (UNESCO)
2. यू० एन० ओ० (UNO)
3. नाम (NAM)
4. सार्क (SAARC)
5. समूह–8 (G–8)
6. समूह–20 (G–20)
7. नाटो (NATO)
8. आसियान (ASEAN)

8.5 सारांश (Summary)

8.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

8.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

8.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य विश्व शांति सुरक्षा हेतु स्थापित संस्थाओं को विस्तार जानना है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति एवं सुरक्षा स्थापित करना तथा इसे बनाए रखना, आज के युग में सर्वोपरि है। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभिषिका ने लोगों को विश्व सुरक्षा पर सोचने को विवश किया। परिणामस्वरुप समय–समय पर विश्व सुरक्षा के मद्देनजर अनेक संगठनों की स्थापना की गई। इन संगठनों में प्रमुख रुप से UNESCO, UNO, NAM, SAARC, G–8, G–20, NATO, ASEAN जैसे संगठनों ने समय–समय पर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अतः, इस पाठ के अंतर्गत हम उपरोक्त संस्थाओं के बारे में जानकारी कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति एवं सुरक्षा स्थापित करने में जिन महत्वपूर्ण संस्थाओं द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है। इन संस्थाओं द्वारा निभाई गई भूमिका की विस्तृत जानाकरी इस पाठ में दी जा रही है। इन संस्थाओं का उद्‌भव क्यों हुआ? किस वर्ष हुआ? इनके स्थापित होने के पीछे किन कारणों ने अपना योगदान दिया; वगैरह। इस पाठ में हम यह भी जानेंगे कि उपरोक्त संस्थाओं ने अपना दायित्व निभाने में कितनी सफलता प्राप्त की।

इस प्रकार विश्व शांति स्थापित करने हेतु स्थापित संस्थाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.2 विश्व शांति से संबंधित महत्वपूर्ण संस्थाएँ (Important Oganization related to world peace)

इस पृथ्वी पर वैसे तो बहुत सारे युद्ध हुए, परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इस पर रोक लगाने के लिए विश्व स्तर पर एक संस्था निर्माण हुआ था, जिसका नाम राष्ट्र संघ था। हालॉकि इस संस्था के बावजूद द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिक प्रथम विश्वयुद्ध से कई गुना ज्यादा था। उस समय सभ्य देशों ने विश्व सुरक्षा पर चिंता जताई। इस चिंता को ध्यान में रखकर विश्व शांति तथा सुरक्षा के तहत् समय–समय पर विश्व स्तर, विकसित देश, विकासशील देश आदि बातों का ध्यान रखते हुए अनेक संस्थाओं का निर्माण हुआ; ताकि पृथ्वी के पर्यावरण तथा इसकी सुरक्षा से संबंधित बातों का मंच अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हो तथा विश्व के देशों को संबंधित जानकारी तथा गाइडलाइन उपलब्ध करवाया जा सकें।

इसके तहत आने वाले संस्थाओं को अब हम विस्तारपूर्वक जानेंगे।

8.2.1 संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO)

इस संस्था का गठन द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् राष्ट्र संघ के स्थान पर किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ही दुनियाभर ने स्थायी शांति एवं सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए, कई सम्मेलनों के पश्चात् 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्भव एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में हुआ ताकि विश्व में मानव जाति की सुरक्षा का ध्यान रखा जा सके। इसका मुख्यालय जेनेवा अवस्थित है तथा करीब 182 देश इसके सदस्य हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रमुख उद्देश्य (Main Aim of UNO) इसके चार्टर में वर्णित है। इसके प्रस्तावना में यह घोषण की गई है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन में शामिल हुई मानव जाति का लक्ष्य है आने वाली पीढ़ियों को युद्ध जैसी भयंकर त्रासदी से बचाना। इस चार्टर के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शांति एवं सुरक्षा को बनाए रखना है। इसके अलावा जिन उद्देश्यों को चार्टर के पहले अध्याय के पहले अनुच्छेद में वर्णन किया गया, वे हैं:

1. अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बनाए रखना तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए झगड़ों का शांतिपूर्ण निपटारा और सशस्त्र आक्रमण की स्थिति से निटपने के लिए प्रभावशाली सामूहिक कार्यवाही का प्रयत्न करना।
2. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय किसी भी प्रकार की अंतर्राष्ट्रीय समस्या को सुलझाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना।
3. अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान करना।
4. राष्ट्रों के आत्मनिर्णय और उपनिवेशवाद विघटन की प्रक्रिया को गति देना तथा निरस्त्रीकरण के अलावा नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना करना।

उपर्युक्त सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संयुक्त राष्ट्र के द्वारा अपनी स्थापना काल से लेकर आज तक वैश्विक स्तर पर अनेक प्रयास किए गए। इन प्रयासों का ही प्रतिफल है कि विश्व की मानव जाति को पुनः प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध जैसी त्रासदी का सामना नहीं करना पड़ा। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शांति में अहम् भूमिका रही है। इसके सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य अमेरीका, इंगलैण्ड, फ्रांस, रुस और चीन को वीटो शक्ति का अधिकार है।

8.2.2: सार्क (SAARC)

सार्क की स्थापना का प्रयास सात देशों की 1981 में कोलम्बों में विदेश सचिव स्तर की बैठक के दौरान हुआ। दिसम्बर 1985 में ढ़ाका में प्रथम शिखर सम्मलेन आयोजित किया गया। जिसमें भारत, नेपाल, बंग्लादेश, भूटान, पाकिस्तान और श्रीलंका इसके संस्थापक सदस्य बने। अब मालदीव तथा अफगानिस्तार को मिलाकर कुल 8 सदस्य देश हो चुके हैं।

औपनिवेशिक युग की समाप्ति के बाद दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के संबंधो के इतिहास में सार्क (SAARC) की स्थापना एक मील का पत्थर था, क्योंकि इसकी स्थापना से पूर्व दक्षिण एशियाई देश अपने क्षेत्रीय संबंधों के संघर्षपूर्ण स्थिति के लिए जाने जाते थे। यह (सार्क) अन्य क्षेत्रीय संगठनों तथा यूरोपीय संघ, आसियान, खाड़ी सहयोग परिषद् से भिन्न है; क्योंकि इन अधिकतर क्षेत्रीय संगठनों पर बाहरी वातावरण, विशेषकर महाशक्तियों

का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव रहा है। इन बाहरी प्रभावों के खतरों को क्षेत्रीयवाद एवं क्षेत्रीय सहयोग की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सार्क की स्थापना का उद्देश्य (Aim of SAARC) क्षेत्रीय सहयोग की वचनबद्धता मूर्तरुप, मैत्री, विश्वास और आपसी सूझबूझ के साथ साझा समस्याओं, को हल करने की दिशा में मिलकर कार्य करना था। व्यापक परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास की व्यूह रचना के अलावा, इसे एक प्रतिरक्षात्मक व राजनीतिक व्यवस्थाओं को नया मोड़ देने में सक्षम साबित हो सकता है। सार्क का झुकाव आर्थिक सहयोग, पर्यावरण, गरीबी उन्मूलन आदि प्रमुख क्षेत्रों में ठोस विकासोन्मुख विचार–विमर्श की ओर है।

सार्क 1985 में स्थापना से लेकन आज तक सराहनीय कार्य करते हुए दक्षिण एशिया की आवाज बना हुआ है। मुख्य रुप से संगठनात्मक गतिविधियों का समन्वित कार्यक्रम, व्यापार उदारीकरण (साप्टा और साफ्टा), गरीबी उम्मूलन, संयुक्त उद्यम स्थापित करने, क्षेत्रीय परियोजनाओं के लिए सार्क कोष, शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विकास हुआ है। सार्क के मंच से सामाजिक और नागरिक विकास; जैसे– गरीबी उम्मूलन, साक्षरता, महिला सशक्तिकरण आदि के लिए क्षेत्रीय खाद्य बैंक (2007) तथा सार्क विकास फण्ड की स्थापना की गई है। इसी प्रकार, प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने के लिए ढ़ाका, नई दिल्ली तथा मालदीव में सार्क प्राकृति आपदा प्रबंधन की स्थापना की गई है।

सार्क ने कोलम्बों शिखर सम्मेलन (1991) में सर्वप्रथम "**दक्षिण एशिया वरीयता व्यापार**" समझौता (SAPTA) पर विचार किया और सातवें शिखर सम्मलेन 1993 (ढाका) में सर्वसम्मति से साफ्टा पर हस्ताक्षर किए तथा 1995 में इसे लागू करने के साथ सदस्य देशों में आपसी व्यापार और सीमा शुल्कों में कमी करके सहयोग बढ़ाने पर बल दिया है।

8.2.3: जी–20 (G–20)

जी–20 के अंतर्गत 19 सदस्य देश और यूरोपीय संघ शामिल है। जी–20 समूह में अर्जेन्टीना, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा, चीन, फ्रांस, जर्मनी, इण्डोनेशिया, इटली, जापान, मेक्सिकों, रूस, सउदी अरब, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण कोरिया, टर्की, ब्रिटेन व अमेरीका के अतिरिक्त भारत 9 यूरोपीय संघ भी शामिल हैं। एशियाई वित्तीय संकट के उपरांत 1999 में वित्त मंत्रियों व केन्द्रिय बैंकों के गर्वनरों की बैठक के रुप में G–20 की शुरुआत हुई। वॉशिगटन डी सी में 2008 में नेताओं की पहली शिखर बैठक सम्पन्न। हुई यह संगठन विश्व की प्रमुख विकसित एवं उभरती अर्थव्यवस्थाओं का एक मंच है। जिसका गठन मूलतः 1997 के एशियाई वित्तीय संकट के परिप्रेक्ष्य में 1999 में किया गया था। वैश्विक वित्तीय बाजार में स्थिरता लाने के उद्देश्य से गठित किया गया था। इसके गठन के पश्चात् इसके सदस्य देशों के वित्त मंत्रियों व केन्द्रीय बैंकों के गवर्नरों की वार्षिक बैठकें होती रही थी, G–20 शिखर सम्मलेन में यूरोपीय संघ का प्रतिनिधित्व यूरोपीय परिषद् (EC) के अध्यक्ष व यूरोपीय केन्द्रिय बैंक द्वारा किया जाता है। जी–20 की शक्ति एवं सार्थकता का आकलन इससे किया जा सकता है कि विश्व की दो–तिहाई जनंसख्या जी–20 देशों में निवास करती है तथा वैश्विक सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 85 प्रतिशत भाग का उत्पादन इन देशों द्वारा किया जाता है तथा वैश्विक व्यापार का 80% प्रतिशत इन देशों द्वारा ही किया जाता है। हालाँकि G–20 का कोई सचिवालय या मुख्यालन नहीं है। सदस्य देशों द्वारा बारी–बारी से इसके शिखर सम्मलेन का आयोजन किया जाता है। मंदी की तीव्रता पर नियंत्रण के पश्चात् 2011 से यह शिखर सम्मलेन वर्ष में एक–एक बार ही होने लगा है।

8.2.4: आसियान (ASEAN)

दक्षिण–पूर्व एशिया के 10 देशों के समूह का आसियान (ASEAN–Association of South East Asain Nations) नामक संगठन है। इसके सदस्य देश में सम्मलित है, इंडोनेशिया, सिंगापुर, फिलीपींस, मलेशिया, ब्रूनेई, थाईलैंड, कंबोडिया, लाओस, म्यांमार और वियतनाम। आसियान का प्रमुख उद्देश्य सदस्य देशों की संप्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता और स्वतंत्रता को स्थापित रखते हुए विवादों का शांतिपूर्वक समाधान करना रहा है। आसियान के प्रमुख स्तम्भों में (i) आसियान राजनीतिक सुरक्षा समुदाय (ii) आसियान आर्थिक समुदाय तथा (iii) सामाजिक–सांस्कृतिक समुदाय हैं।

इस समूह का लक्ष्य था– "आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सामरिक समन्वय के साथ परस्पर विकास को प्रोत्साहित करना था।

आसियान के 10 देशों और उसके कुछ सहयोगी (चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और भारत) एक क्षेत्रीय मुक्त व्यापार समझौते को मूर्त्त रुप देने की सक्रिय कोशिश कर रहे हैं।

भारत लगातार आसियान देशों के साथ संबंध बनाए हुए हैं। यहाँ तक की भारत का कुल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का दस प्रतिशत आसियान देशों के साथ है। भारत को इसे और बढ़ाने पर ध्यान देना होगा। चीन के वर्चस्व से निबटने के लिए भारत को आसियान देशों से संबंध में प्रगाढ़ता बनाते हुए भारत–पाकिस्तान देश समुद्री परिवहन समझौतों को शीर्घ सम्पन्न कराने के लिए सक्रिय होना चाहिए। चीन की महत्वाकांक्षी 'वन बेल्ट वन रोड' प्रोजेक्ट के प्रति उत्तर में भारत को आसियान देशों के साथ जोड़ने की परियोजना को शीघ्र मुर्त रुप देना चाहिए।

8.2.5 नाटो (NATO)

यह 28 सदस्यीय देशों वाला यूरोपीय संगठन है। नाटों की स्थापना 12 सदस्य राष्ट्रों के साथ 1949 में हुई थी। बाद में 6 बार समय–समय पर नए सदस्य इसमें शामिल किए गए हैं। जिसके कारण अब इनके सदस्यों की संख्या 28 हो गई है। 1949 में 12 सदस्यों में बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, आइसलैण्ड, इटली, लक्जेमबर्ग, नीदरलैण्ड्स, नार्वे, पुर्तगाल, ब्रिटेन व अमरीका थे। बाद में, ग्रीस, टर्की, जर्मनी, लाटविया, लिथुवानिया, रूमानिया, स्लोवाकिया, स्लोवानिया, अल्बानिया एवं क्रोएशिया इससे जुड़ गए।

इस संगठन की स्थापना 4 अप्रैल 1949 को हुई। इसका मुख्यालय ब्रुसेल्स (बेल्जियम) में है। इस संगठन का उद्देश्य सामूहिक सुरक्षा था, जिसके अंतर्गत सदस्य राष्ट्र बाहरी हमले की स्थिति में सहयोग करने के लिए सहमत होगें। हालांकि शुरूआती दौर में यह संगठन एक राजनीतिक संगठन से अधिक नहीं था। लेकिन क्रोशियाई युद्ध ने सदस्य देशों के लिए प्रेरक का काम किया और दो अमरीकी सर्वोच्च कमांडरों के दिशानिर्देशन में एक एकीकृत सैन्य संरचना निर्मित की गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ ने पूर्वी यूरोप से अपनी सेवाएँ हटाने से इंकार कर दिया और वहाँ साम्यवादी शाासन की स्थापना का प्रयास किया। अमेरिका ने यूरोपीय देशों को साम्यवादी खतरों से आगाह किया परिणामस्वरूप यूरोपीय देश एक ऐसे संगठन के निर्माण हेतु तैयार हो गए, जो उनकी सुरक्षा करें। चुँकि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान पश्चिमी यूरोपीय देशों ने अत्यधिक नुकसान उठाया था। इन देशों के आर्थिक पुननिर्माण में अमेरिका एक बहुत बड़ी आशा थी। अतः, अमेरिका द्वारा नाटो की स्थापना का स्वागत एवं समर्थन किया गया।

इस संगठन का उद्देश्य यूरोप पर आक्रमण की अवधि में अवरोधक की भूमिका निभाना था। पश्चिमी यूरोप में सोवियत संघ का विस्तार रोकना था एवं युद्ध की स्थिति में लोगों के मानसिक रूप से तैयार करना था। यूरोपीय राष्ट्रों के लिए सुरक्षा छत्र प्रदान करना, जिससे वे सैन्य तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रम एक जुट होकर कर सकें। पश्चिम यूरोप के देशों को एक सूत्र में संगठित करना एवं 'स्वतंत्र विश्व' की रक्षा के लिए साम्यवाद के प्रसार को रोकना और यदि संभव हो तो साम्यवाद को पराजित करने के लिए अमेरिका की प्रतिबद्धता माना गया।

नाटो के स्वरुप व उसकी भूमिका को उसके संधि प्रावधानों के आलोक में इस प्रकार समझा जा सकता है कि आरंभ में ही कहा गया है कि हस्ताक्षरकर्त्ता राष्ट्र, सदस्य देशों की स्वतंत्रता, ऐतिहासिक विरासत, लोकतांत्रिक मूल्यों, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और कानून के शासन की रक्षा की जिम्मेदारी लेंगे। हस्ताक्षारित राष्ट्र का आपस में संबंध सहयोगात्मक होगा। इस संबंधित राष्ट्रों में से किसी एक पर आक्रमण सभी देशों पर आक्रमण माना जाएगा। इस स्थिति में, संधिकर्ता एकजुट होकर सैनिक कार्यवाही के माध्यम से एकजुट होकर तात्कालिक स्थिति का मुकाबला करेगें। इस प्रकार संधि का स्वरुप सदस्य देशों को सुरक्षा छतरी प्रदान करेगा।

नाटो ने पश्चिमी यूरोप के सदस्य देशों के मध्य एकीकरण में अहम भूमिका निभाई। इतिहास में पहली बार पश्चिमी यूरोप के शक्तिशाली देशों ने अपनी कुछ सेनाओं को स्थायी रुप से एक अंतर्राष्ट्रीय सैन्य संगठन के अंतर्गत रहना स्वीकारा। नाटो के गठन से अमेरिका के अलग–थलग पड़ने की नीति समाप्त हुई। नाटो का गठन शीतयृद्ध को बढ़ावा दिया और सोवियत रूस ने इसे साम्यवाद के विरोध में देखा। इस संगठन ने अमेरिका के विदेश नीति को भी प्रभावित किया।

8.2.6 गुटनिरपेक्ष आंदोलन (Non-Aligned Movement NAM)

"गुटनिरपेक्ष आंदोलन" का नाम 1961 में शीतयुद्ध काल में हुआ था। शीतयुद्ध से बचने के लिए ऐसे देशों ने एक संगठन बनाया, जो न तो अमरीका के साथ रहना चाहते थे और न ही तत्कालीन सोवियत संघ के साथ। सन् 1961 में बेलग्रेड में 25 विकासशील देशों की शुरूआती सदस्यता के साथ इस संगठन का गठन किया गया। भारत इसका संस्थापक सदस्य रहा है। यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति जोसिप टीटो, तात्कालिन भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु, मिस्त्र के तत्कालीन राष्ट्रपति गमाल अब्दूर नासिर, इण्डोनेसिया के तत्कालीन राष्ट्रपति, सुकर्णो, एवं घाना के तात्कालीन राष्ट्रपति क्वामी कुमाह ने अपनी अग्रणी भूमिका निभाई थी। सन् 1945 में, केवल 51 देशों के साथ अस्तित्व में आए इस मंच के सदस्यों की संख्या अब 193 हो चुकी है। 'नाम' (NAM) के 17वें शिखर सम्मेलन का थीम "Peace, Sovereiginity and Solidarity for Development" था; इसे इसकी स्थापना के सिद्धांतों के अनुरुप बताया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दो महाशक्तियों के अलावा एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे तीसरी दुनिया के नाम से जाना जाने लगा। तीसरी दुनिया का अर्थ है एशिया, लैटिन अमरीका व अफ्रीका महाद्वीप के नवोदित राष्ट्रों के राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना। विश्व शांति, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय, सुरक्षा के लिए निरंतर प्रयासरत् रहना एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शीतयुद्ध की भूमिका पर नियंत्रण करना भी इस संगठन का उद्देश्य है। स्वतंत्र विदेश नीति को अपनाना, जिससे गुटनिरपेक्ष राजनीति से दूर रहा जा सके। इसके अलावा, शांतिपूर्व सह–अस्तित्व और सहयोग को बढ़ावा देना। सभी देशों गैर साम्यवाद एवं साम्यवादी, के साथ मित्रता का भाव रखते हुए विकास के लिए सहयोग करना।

इस संगठन के माध्यम से साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध करना तथा स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत् देशों का समर्थन देना। तीसरी दुनिया के नवोदित राष्ट्रों को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में स्वतंत्रता रीति–नीति पर चलने के लिए प्रेरित करना। इस संगठन के माध्यम से निशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियंत्रण को बढ़ावा देने की नीति थी। जातिवाद, रंगभेद, क्षेत्रीयता आदि के आधार पर हो रहे भेद–भाव का विरोध करना। द्विध्रुवीय व्यवस्था के स्थान पर बहुध्रुवीय व्यवस्था स्थापित करके, उसके स्थान पर स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय और सर्व–कल्याण के सिद्धान्तों पर आधारित नई विश्व–स्थापना करना भी इस संगठन का उद्देश्य रहा। साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका और प्रभाव में मजबूती लाने के लिए सहयोग देना, वगैरह कार्य रहा।

भारत गुटनिरक्षेप आंदोलन के संस्थापक राष्ट्रों में प्रमुख रहा। आजादी के बाद, यह आंदोलन भारत की विदेश नीति का प्रमुख आधार–स्तंभ रहा एवं शीत युद्ध के दौरान, भारत ने अपने कई राष्ट्रीय हित को प्राप्त किया।

8.2.7 युनेस्को (UNESCO)

यूनेस्को का अर्थ है संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (United Nations Educational Scientific and Cultural Organization) । यह संयुक्त राष्ट्र संघ का शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक विकाय है। इसका मुख्यालय फ्रांस के **पेरिस** में स्थित है। इसका कार्य शिक्षा, प्रकृति तथा समाज विज्ञान, संस्कृति तथा संचार के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय शांति को बढ़ावा देना है। इस संस्था का गठन विशेष रुप से 4 नवम्बर 1946 को हुआ था। इस संस्था के गठन का उद्देश्य शिक्षा एवं संस्कृति के अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के शांति एवं सुरक्षा की स्थापना करना है। यह संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में वर्णित न्याय, कानून का राज, मानवाधिकार एवं मौलिक स्वतंत्रता हेतु वैश्विक सहमति के निमित है। इसके अंतर्गत 195 सदस्य देश है। इसके अलावा सात सहयोगी सदस्य देश और दो पर्यवेक्षक सदस्य देश हैं। इसके ज्यादातर क्षेत्रीय कार्यालय क्लस्टर के रुप में हैं, जिसके अंतर्गत तीन–चार देश आते हैं, इसके अलावा इसके राष्ट्रीय और क्षेत्रीय कार्यालय भी हैं। यूनेस्को के 27 कलस्टर कार्यालय और 21 राष्ट्रीय कार्यालय हैं। यह संगठन मुख्यतः शिक्षा, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक एवं मानव विज्ञान, सांस्कृतिक एवं सूचना एवं संचार के जरिये अपनी गतिविधियां संचालित करता है। यह विश्व में साक्षरता

बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को भी प्रायोजित करता है और वैश्विक धरोहर की इमारतों और पार्कों के संरक्षण में भी सहयोग करता है। भारत की भी कई ऐतिहासिक इमारत एवं पार्क यूनेस्को की विरासत सूची में सूचीबद्ध है। दुनिया भर के 332 अंतरराष्ट्रीय स्वयंसेवी संगठनों के साथ यूनेस्कों के संबंध है। भारत 1946 से ही यूनेस्का का सदस्य है।

हमने यूनेस्को के संबंध में जाना।

8.2.8 जी–8 (G–8)

जी–8 या ग्रुप आठ (Group of Eight–G8) के नाम से एक अंतर्राष्ट्रीय मंच या फोरम बना है।। इस मंच या संगठन की स्थापना फ्रांस द्वारा 1975 में समूह–6 के नाम से विश्व के छः सबसे धनी राष्ट्रों की सरकारों के साथ मिलकर की थी। ये राष्ट्र थे फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका। सन् 1976 में कनाडा को भी शामिल कर लिया गया तथा मंच का नाम बदलकर समूह–7 कर दिया गया। 1997 में इसमें रुस को भी शामिल कर लिया, तत्पश्चात् इस मंच का नाम समूह–8 (Group–8) हो गया। समूह–8 के अंतर्गत सदस्य देश यूरोपियन संघ का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। इस संस्था का उपयोग शिखर सम्मेलन के अंतर्गत, सदस्य राष्ट्रों की सरकारों के प्रमुख भाग लेते हैं। प्रत्येक वर्ष, इस बैठक की मेजबानी का दायित्व सदस्य राष्ट्रों में इस क्रम में घुमता हैः फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, रुस, जर्मनी, जापान, इटली और कनाडा।

8.3 सारांश (Summary)

इस पाठ के अंतर्गत हमने विभिन्न संगठनों को जाना। विश्व में शांति स्थापित करने हेतु जिन प्रमुख संगठनों का निर्माण किया गया है, उनमें यू० एन० ओ०, यूनेस्को, नाम, सार्क, समूह–8, समूह–20, नाटो, आसियान आदि संगठनों के संबंध में विस्तृत जानकारी दी गई है। आशा है कि संबंधित जानकारियाँ छात्रों के ज्ञानवर्द्धन में अपना अहम योगदान देगी।

8.4 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. विश्व में शांति हेतु स्थापित प्रमुख संस्थाओं को वर्णित करें।
   Describe the important organization for World Peace.
2. यू० एन० ओ० तथा यूनेस्को के कार्य एवं कार्यों में अंतर को बताएँ।
   Describe the functions of UNO and UNESCO and differenciate between their work.
3. निम्नलिखित बिंदुओं पर टिप्पणी लिखें:?
   Write short notes on the following topics:
   (a) नाटो (NATO)
   (b) आसियान (ASEAN)
   (c) नाम (NAM)
   (d) यूनेस्को (UNESCO)

8.5: प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकांक, 2018
2. प्रतियोगिता दर्पण अर्द्धवार्षिकांक, 2018
3. Kulnazarova & Ydeseva, Aigul and Christion: UNESCO ourthout bordess
4. Tripatha, A.K: International Organization.
5. Muni, S.D: The Emerging Dimension of SAARC.
6. Mahbubani, Sri Kishore and Jeffery: The ASEAN Miracale
7. Herd and Kriendler, Graeme P. and John: understanding NATO in 21st Century